LIBRARY

मेहसाणा में दो श्वेत क्रान्तियां

21 लाख की आबादी वाले उत्तरी गुजरात के मेहसाणा जिले की सामाजिक आर्थिक दशा सुधारने और वहां की भूमि का रूप संवारने में मेहसाणा की सहकारी दूध सागर डेयरी और कपास की नई किस्म संकर 4 ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन दो श्वेत क्रान्तियों—एक दूध की और दूसरी कपास की—ने शहरी धन को कृषक समुदाय की ओर लाना शुरू कर दिया है।

मेहसाणा जिले में दूध सागर डेयरी 1965 में दूध उत्पादकों की सहकारी यूनियन द्वारा केन्द्रीय और राज्य सरकारों की वित्तीय सहायता से स्थापित की गई थी। यह डेयरी हमारी सेनाओं की दूध के पाउडर की जरूरत पूरी करने के उद्देश्य से ही स्थापित की गई थी।

यूनियन ने पहले पांच वर्षों में 14 करोड़ रुपये की दूध से बनी वस्तुएं बेची हैं और 1974 तक इस बिक्री के दुगुनी हो जाने की सम्भावना है।

शहरी धन के लगातार आने से ग्रामीण समुदायों की सामाजिक आर्थिक दशा में काफी सुधार हुआ है। अब सहकारी दूध उत्पादकों के पास रहने के अच्छे मकान हैं और उनकी ऋण लेने की क्षमता भी काफी बढ़ गई है। अब राष्ट्रीयकृत बैंक भी उन्हें ऋण देने लगे हैं और गांव के साहूकार अब उनका शोषण नहीं कर सकते।

इस डेयरी से लगभग 50,000 ग्रामीण दूध उत्पादकों के परिवारों को सीधा लाभ पहुंचा है।

दूध सागर डेयरी की वर्तमान क्षमता प्रतिवर्ष 2 लाख लिटर दूध से दुग्ध-पदार्थ तैयार करने की है और इसे बढ़ाकर 5 लाख लिटर प्रतिवर्ष किया जा रहा है। आशा है कि 50,000 और ग्रामीण दुग्ध उत्पादक परिवार इस डेयरी को दूध की सप्लाई करेंगे।

एक श्वेत क्रान्ति दुग्ध-क्रान्ति तो जिले के सामाजिक-आर्थिक ढांचे को काफी लाभ पहुंचा रही है तथा दूसरी श्वेत क्रान्ति अभी शुरू हुई है। कपास की संकर 4 किस्म द्वारा लाई गई यह क्रान्ति भी जिले की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में काफी सुधार लाएगी, ऐसी आशा की जाती है।

कपास की संकर 4 किस्म गुजरात-67 और एक अमरीकी किस्म के संकरण से तैयार की गई है। कपास की इस नई किस्म में अन्य किस्मों की अपेक्षा जल्दी फूल आ जाते हैं। उसके फूले भी लम्बे होते हैं।

हमारे देश का वस्त्र उद्योग अभी तक मिस्री और अमेरिकन कपास पर, (केवल उनके रेशे बड़े होने के कारण) निर्भर है और इस संकर 4 किस्म से अब हमारी अन्य देशों पर निर्भरता समाप्त हो जाएगी और हम आत्म-निर्भर हो जाएंगे।

मेहसाणा के किसानों ने 1970-71 में संकर-4 किस्म को 5,000 एकड़ भूमि पर बोया। 1971-72 में इसके अन्तर्गत 15,000 एकड़ भूमि आ गई। संकर-4 किस्म के अन्तर्गत अधिक भूमि लाने के लिए विशेष रूप से संकरित बीज की आवश्यकता है।

संकर-4 किस्म उगाने की सार्थकता साबित करने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण बीजापुर तालुके का 1,260 की आबादी वाला गांव इन्द्रपुर है। इस गांव में कुल 183 किसान हैं और कुल भूमि 983 एकड़ है जिसमें से 863 एकड़ सिंचित है। मेहसाणा जिले में संकर-4 किस्म उगाने में अग्रणी इस गांव ने इस किस्म से लगभग 18 लाख रुपए की आय ली है।

आशा है कि आगामी दशक में मेहसाणा जिले के अन्य गांव भी इन्द्रपुर द्वारा दिखाए गए रास्ते पर चलेंगे और अपनी भावी पीढ़ी के लिए समृद्धि और उन्नति का पथ प्रशस्त करेंगे।

मजदूर मंजिल

वर्ष 17 ज्येष्ठ 1894 अंक 8

इस अंक में

	पृष्ठ
कृषि अनुसन्धान और उर्वरकों में चोली दामन का सम्बन्ध **डा० अम्बिका सिंह**	2
ग्रामीण आवास की समस्याएं **प्रेमनारायण मिश्र**	4
ऊंची तेरी शान है (कविता) **ओम प्रकाश शर्मा**	6
ग्राम पंचायतों की परम्परा **सत्यप्रकाश गुप्ता**	7
कीट व्याधियों और खरपतवारों से जूझता कृषि विज्ञान **ब्रजलाल उनियाल**	9
भूमि तथा जल संरक्षण में वनों का महत्व **बैजनाथ द्विवेदी और गंगाशरण सैनी**	12
छोटे किसानों व खेतिहर श्रमिकों की समस्याएं **जगदीश शरण गुप्ता**	15
सामुदायक विकास के अग्रदूत **सुरेशचन्द जैन**	18
राष्ट्र का गौरव किसान भी जवान भी **डा० श्यामसिंह शशि**	20
नव युगोदय (कविता) **कमल साहित्यालंकार**	21
मरुधरा में हरे-भरे जीवन की आशा **मुकुलचन्द पाण्डेय**	22
कृषि उत्पादन के बढ़ते चरण	24
कुकुरमुत्ता पोषक और स्वादिष्ट खाद्य **ब्रह्मदत्त स्नातक**	27
साहित्य समीक्षा	28
मुक्ति की राह पर **सुलेमान टाक**	29
पीपल का पेड़ **ओमदत्त वत्स**	31
केन्द्र के समाचार	33
राज्यों के समाचार	35

दूरभाष 382406

एक प्रति 30 पैसे : वार्षिक चन्दा 3.00 रुपए

स० सम्पादक : महेन्द्रपाल सिंह

उपसम्पादक : त्रिलोकी नाथ

आवरण पृष्ठ : बलराम मण्डल

गांवों में स्वास्थ्य की समस्या

यह ठीक है कि हमारे गांवों में मलेरिया, प्लेग तथा हैजा जैसे मारक रोगों का अब वैसा प्रकोप नहीं रहा जैसा स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले था पर मोतीझला, खसरा आदि रोगों का प्रकोप अभी भी वैसा ही बना हुआ है। पेचिश, प्रवाहिका, संग्रहिणी तथा तपेदिक जैसे रोग, जिनका गांवों में पहले कोई नाम भी नहीं जानता था, अब जन-सामान्य के जीवन में व्याप्त हो गए हैं। जब कोई ग्रामीण इनमें से किसी एक रोग के चंगुल में फंस जाता है और समुचित औपचारिक व्यवस्था के बिना जब रोग जीर्ण रूप धारण कर लेता है तो रुग्ण व्यक्ति किसी काम का नहीं रहता और खाट पर पड़ा पड़ा अपनी जिन्दगी के क्षण गिनता रहता है। अपनी स्वस्थावस्था में अपने शारीरिक और बौद्धिक बल द्वारा वह जो कुछ राष्ट्र को दे सकता था वह नहीं दे पाता, बल्कि अपने घरवालों और राष्ट्र दोनों के लिए भारस्वरूप बन जाता है। आज हमारे अधिकांश गांवों में स्वास्थ्य की यही स्थिति है और इस स्थिति से उबरने के लिए जरूरी है कि गांवों में स्वास्थ्य सुधार की दिशा में जोरदार प्रयास किए जाएं।

पहले तो हमारे स्वस्थ जीवन के लिए हवा और पानी का बड़ा महत्व है। जहां ये अपनी शुद्धवास्था में हमारे लिए अमृत है वहां अपनी अशुद्धावस्था में जहर भी हैं। अतः जरूरी है कि गांवों में बीमारी की रोकथाम के लिए सफाई, स्वच्छता और शुद्धता का वातावरण कायम किया जाए क्योंकि इलाज की अपेक्षा बीमारी की रोकथाम ज्यादा अच्छी होती है। इसमें शक नहीं कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के शुरू से ही गांवों में स्वास्थ्य सुधार की व्यवस्था कायम करने पर काफी जोर दिया गया है। सफाई अभियान भी शुरू किए गए और शुद्ध पेयजल मुहैया करने पर भी विशेष बल दिया गया। अभी हाल में केन्द्रीय सरकार द्वारा एक लाख 52 हजार गांवों में शुद्ध पेयजल उपलब्ध करने के निमित्त 575 करोड़ रु० की एक योजना भी बनाई गई है। पर इतना भारी काम होने पर भी परनाला जहां का तहां रहता है। देखना यह है कि हमारे इस आयोजन में कहां क्या कमी है।

जहां तक गांवों में स्वास्थ्य सेवाओं का सम्बन्ध है, इस दिशा में स्थिति और भी अधिक दयनीय है। राष्ट्र डाक्टरी शिक्षा पर काफी धन व्यय करता है। एक अनुमान के अनुसार तो एक डाक्टर तैयार करने पर राष्ट्र का 80 हजार रु० खर्च होता है पर उसका लाभ गांव वालों को नहीं के बराबर ही मिल पाता। गांवों में शहरी सुविधाएं न होने के कारण डाक्टर लोग गांवों में जाना पसन्द नहीं करते। फलतः जहां कहीं गांवों

शेष पृष्ठ 8 पर]

कृषि अनुसन्धान और उर्वरकों में चोली दामन का सम्बन्ध

[भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् के सहायक महानिदेशक डा० अम्बिका सिंह, सिर्फ कृषि विज्ञान के ही नहीं, अपितु हिन्दी व संस्कृत के भी प्रकाण्ड विद्वान हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में वे हमेशा 'सर्वप्रथम' रहे। मेधावी, वैज्ञानिक किन्तु व्यवहार में नम्र व शिष्ट डा० सिंह कृषि-विज्ञान के जाने-माने अधिकारी विद्वान हैं। हाल में ही डा० सिंह की नगला पंजाबा, फरुखाबाद के किसानों के साथ खुली बातचीत हुई है, जिसे प्रस्तुत लेख में दिया गया है। आशा है कि डा० सिंह के सुलझे हुए विचार पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक व लाभदायक सिद्ध होंगे।]

यदि भारत की भलाई की बात की जाए या देश की उन्नति की बात की जाए तो यह बहुत हद तक किसान की भलाई की बात है और किसान की उन्नति तब तक नहीं हो सकती जब तक कृषि की उन्नति नहीं होती। कृषि, अनुसन्धान और उर्वरक में चोली दामन का सम्बन्ध है। सन् 1842 में इंगलैण्ड के सर जान लाज नामक एक वैज्ञानिक ने, जो वहां के एक जमींदार भी थे और राथम स्टेट में उनका एक बड़ा फार्म भी था, हड्डियों का चूरा लिया और उस पर सल्फ्यूरिक एसिड डाल कर पहला उर्वरक बनाया। यह प्रयोग 1842 में किया गया और 1843 में उन्होंने अपनी राथम स्टेट अनुसन्धान केन्द्र बनाने के लिए दान कर दी। बाद में वे यहां के निदेशक भी बने। वहीं से कृषि-अनुसन्धान का प्रारम्भ हुआ। संसार के अन्य देशों में और अनुसन्धान केन्द्र खुले और उसी आधार पर अपने देश में भी पूसा कृषि संस्थान की स्थापना हुई जो आज संसार में अग्रगण्य है। कहने का अर्थ यह है कि उसी समय आधुनिक कृषि का भी प्रारम्भ हुआ। आधुनिक कृषि और उर्वरक दोनों का साथ-साथ जन्म हुआ और खेती में जो कुछ आधुनिकता है, नई-नई चीजें हैं, उनमें दोनों का ही समान योग है। अतः जो संस्था, जो बिजनेस हाउस तथा और जो कोई भी इस कार्य में लगे हैं, वे सभी खेती की भलाई के लिए अग्रसर हैं और इस दिशा में एक बहुत बड़ा कार्य कर रहे हैं।

राष्ट्रीय प्रदर्शन

सवाल उठ सकता है कि हम दिल्ली से आपके बीच में क्यों आए? सोचते सोचते मुझे ऐसा लगा कि उसका भी एक दृष्टान्त है। हिन्दुस्तान में पहले भी हिन्दू धर्म था और अब भी है। हिन्दू धर्म के कर्त्ताधर्त्ता पुजारी और पण्डित थे। उन्होंने संस्कृति को ऐसी भाषा में रखा, जिसे समुदाय बिल्कुल नहीं समझता था। पूछना-समझना सब कुछ संस्कृत के माध्यम से ही होता था। प्रतिक्रिया स्वरूप इस देश में बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने अपना ज्ञान जनता की भाषा में दिया। उस समय बुद्ध ने कहा, "दुनिया में दुःख है, उस दुःख का कारण तृष्णा है। उस तृष्णा से छुटकारे के आठ रास्ते हैं।" यह एक बिल्कुल सीधी-साधी बात है जिसे हर हिन्दुस्तानी समझ सकता है।

डा० अम्बिका सिंह

बस यही दृष्टान्त हमारे अनुसन्धानों के सन्दर्भ में भी लागू होता है। अपने संस्थानों और विश्वविद्यालयों में बड़े-बड़े अनुसन्धानकर्त्ता काम कर रहे हैं और वे बड़े बड़े ग्रन्थ भी रच डालते हैं, जिससे मालूम हो कि बहुत-सा काम हुआ है। लेकिन इससे तो किसान की भलाई नहीं होती। ठीक उन दिनों जिस प्रकार पानी में ज्ञान आया उसी प्रकार अनुसन्धान के वैज्ञानिक आज प्रदर्शनों के माध्यम से ज्ञान को आपके सामने ला रहे हैं। वे महात्मा बुद्ध की तरह यह कहने आए हैं कि संसार में दुःख है और इसे जीता जा सकता है। ये वैज्ञानिक प्रदर्शन की भाषा में अपनी वैज्ञानिक शब्दावली लाकर आपके खेत के ऊपर बताना चाहते हैं कि किन तरीकों से दुःख से छुटकारा मिल सकता है। जैसे महात्मा बुद्ध ने कहा था कि आठ रास्ते हैं, आठों रास्ते अपनाओ। उसी तरह आप लोग भी कृषि के लिए अच्छा बीज, समय पर पानी, सन्तुलित खाद, कीड़ों-मकोड़ों से निवारण का रास्ता अपनाओ। सरकार का भी कर्त्तव्य है कि आप जो कुछ पैदा करें उसमें आपको घाटा न होने दे।

किसानों की भलाई के लिए किए जा रहे विकास के इस दौर में हमारे देश में एक ऐसा भी समय आया, जब लोगों ने कहा कि गेहूं की फसल में पहले 'हरी खाद' के स्थान पर मक्का की फसल ली जा सकती है। इस तरह प्रति एकड़ भूमि से जहां 40-50 मन गेहूं की पैदावार ली जा सकती है वहां इससे 30-40 मन मक्का की पैदावार भी ली जा सकती है। यह बात जब कृषि विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों के ध्यान में लाई गई, तो इसे यों कहकर टाल दिया गया कि पूसा संस्थान की कृषि में ही ऐसा हो सकता है पर किसान के खेत पर इसकी सम्भावना नहीं। आगे चलकर 1964 के आखिर में और 1965 के शुरुआत में पूसा संस्थान की हीरक जयन्ती मनाई गई। उसी समय देश में राष्ट्रीय प्रदर्शन की योजना का प्रारम्भ किया गया। यह योजना

कालान्तर में अपने आप बढ़ती गई और ऐसी बढ़ी कि बाद में इसे हिन्दुस्तान के अनेक जिलों में लागू किया गया। देश में कुल 324 जिले हैं। इस योजना का फायदा हमारे किसान भाई तभी उठा सकते हैं जब ऐसे प्रदर्शन सभी जिलों के ज्यादातर गांवों में हों। इनमें जो कुछ हो रहा है, उसे घर-घर का बच्चा जाने। जब बच्चे स्कूल जाएं तो अध्यापक उनसे इन प्रदर्शनों की चर्चा करें और बताएं कि इन प्रदर्शनों से क्या क्या लाभ हैं और इनसे किस तरह खेती की पैदावार बढ़ाई जा सकती है। इस तरह ये राष्ट्रीय प्रदर्शन आगे आने वाली पीढ़ी की कृषि-शिक्षा के माध्यम बन सकते हैं।

हमारे संस्थानों से बी० एस० सी०, एम० एस० सी० करके जो स्नातक निकल रहे हैं उनको नौकरियां देना मुश्किल हो रहा है। इतनी नौकरियां कहां हैं? नौकरियों की भी एक हद होती है। इन संस्थानों में बच्चों को जो कुछ पढ़ाया जाता है उसमें व्यावहारिक ज्ञान की कमी और सैद्धान्तिक ज्ञान की अधिकता होती है। दूसरी बात यह कि इन संस्थानों में शिक्षा सारे भारत की परिस्थिति को लक्ष्य करके या किसी राज्य के संस्थान में उस राज्य विशेष की परिस्थिति को लक्ष्य करके दी जाती है पर बच्चे की असली शिक्षा उस समय प्रारम्भ होती है जब वह इन संस्थानों से स्नातक होकर अपने गांव आता है और अपने खेत में काम करता है। उसे इन प्रदर्शनों से ऐसी सामग्री मिल सकती है जिसे वह दूसरों को सिखा सकता है पर यह सामग्री उन्हें नगला पंजावा जैसे किसी गांव के अन्दर ही मिल सकती है, संस्थानों में नहीं। यदि गांव के बच्चे मिलकर ऐसा कार्य प्रारम्भ करें तो इसमें शक नहीं कि स्कूल जाने से पहले की आयु वाले बच्चों से लेकर बी० एस० सी० और एम० एस० सी० तक के बच्चे इन प्रदर्शनों के माध्यम से लाभ उठा सकते हैं। इनसे आपकी पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी को भी लाभ पहुंचेगा। अतः हमेशा ही इन प्रदर्शनों की उपयोगिता बनी रहेगी और जो लोग यह कहते हैं कि अब इन प्रदर्शनों की उपयोगिता नहीं रही उनका कथन उचित नहीं। जैसे बौद्ध धर्म अपनी चीज लेकर आया और फिर उठ गया उसी तरह से हो सकता है कि यदि प्रदर्शन न किए गए और रोज-रोज के विचार-विनिमय तथा चर्चा की परिपाटी तोड़ दी गई तो फिर हमारी आधुनिक खेती भी समय से दूर हट जाएगी और उसी प्रकार मर जाएगी जिस प्रकार कितनी सारी चीजें आई और मिट गईं। किस्में बदलेंगी, भूमि की उर्वरता बदलती जाएगी। आज यदि आपकी भूमि में फास्फोरस की कमी है और बहुत दिनों से फास्फोरस की खाद नहीं दी है, तो एक ऐसा समय भी आ सकता है, जब फास्फोरस की खाद देनी पड़े। ऐसा कई देशों में हुआ भी है। भूमि की उर्वरता का रूप बदलता जाएगा और किस्में बदलेंगी। खाद कितनी दी जाए, किस मात्रा में दी जाए, किस सन्तुलन में दी जाए ये सब की सब चीजें बदलेंगी। जिस प्रकार पढ़ाई का समय विद्यार्थी के डिग्री प्राप्त करने मात्र से खत्म नहीं हो सकता, उसी तरह प्रदर्शनों की हमेशा आवश्यकता रहेगी। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि अगर आज 'एन० पी० के०' का प्रदर्शन किया जा रहा है तो 5 या 10 साल में "एन० पी० के० और जिंक" के प्रदर्शनों का समय भी आ सकता है। फिर इसके बाद कभी बोरोन, कभी मैंग्नीशियम और कभी मैंगनीज के प्रदर्शनों का आयोजन भी हो सकता है जिसे "पैकेज आफ प्रैक्टिस" कहा जा रहा है। लेकिन प्रदर्शन में जिन जिन चीजों से लाभ की जानकारी मिले, वे किसान को उपलब्ध की जानी चाहिएं। उन्हें खरीदने के लिए यदि उसके पास पैसा नहीं है, तो उसके लिए ऋण की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि उसने खाद लगा लिया और कीड़ों-मकोड़ों की रोकथाम कर ली तो प्रोसेसिंग की व्यवस्था होनी चाहिए और यदि प्रोसेसिंग की व्यवस्था नहीं है, तो सीधे विपणन की व्यवस्था होनी चाहिए। इन सबके लिए किसान सरकार की ओर तो देख सकते हैं, लेकिन सरकार भी उन्हीं लोगों की मदद करती है जो अपनी आवाज को ऊपर तक पहुंचा सकते हैं। आप मांग करेंगे तो बहुत से ऐसे लोग हैं, जो आपसे, आपकी मांग से हमदर्दी रखेंगे क्योंकि आप कोई गलत चीज नहीं मांग रहे हैं। आप सही चीज मांग रहे हैं। आप भारत के विकास के लिए मांग रहे हैं आपकी। मांग पूरी होगी।

यह बताना भी अनुचित न होगा कि खादों के बारे में बड़ी बड़ी भ्रान्त धारणाएं बनती रही हैं। एक समय था जब कहा जाता था कि यदि खेतों में उर्वरक डाला जाएगा तो खेतों की उर्वरता नष्ट हो जाएगी। फिर यह कहा गया कि खेत में रेह पैदा हो जाएगा। ऐसी बहुत सी बातें सुनाई पड़ती रहीं पर ये सब भ्रान्त धारणाएं है। खाद से कोई खेत कभी नहीं बिगड़ता। यदि किसी साल खेत में फसल अच्छी नहीं लगी तो कृषि विशेषज्ञ यह बता सकता है कि किस तत्व की कमी के कारण फसल अच्छी नहीं जमी। पर उसके लिए उर्वरक को दोष नहीं दिया जा सकता। जिसके खेत में यह प्रदर्शन हो रहा है, उनसे मैंने आते ही एक सवाल पूछा था कि आज से 10 साल पहले आप जितनी गोबर की खाद डालते थे, आप क्या उतनी खाद अभी भी डाल रहे हैं या कम। तो उन्होंने कहा : "नहीं, उसे तो कम करते आए हैं और उर्वरक को बढ़ाते आए हैं।" मेरी भी यही मान्यता है कि आने वाले 10 साल में सभी देशों में गोबर की खादों का प्रयोग खत्म हो जाएगा पर उर्वरकों की आवश्यकता बढ़ेगी।

इस देश की कृषि की जो बातें हैं, और जिन्हें हम आपसे कह रहे हैं, उनका प्रारम्भ महात्मा गांधी के हाथों से चम्पारण जिले में बिहार में हुआ था। धीरे-धीरे उनका राजनीतिक रूप बदलते-बदलते आज व्यावहारिक वैज्ञानिक पहलू सामने आ गया है और यदि आप हमारी बातों का अनुसरण करोगे तो भारत माता फलेगी, फूलेगी और आप भी फलेंगे, फूलेंगे।

ग्रामीण आवास की समस्याएं

प्रेमनारायण मिश्र

सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने अपने लिए आवास की सुविधा का विकास किया। घर ही ऐसा स्थान है जहां मनुष्य के जीवन का अधिकांश समय व्यतीत होता है और जहां वह सुख और शान्ति का अनुभव करता है। घर के अन्दर ही वह प्रकृति एवं अन्य प्रकार के अवांछनीय प्रभावों से अपने को सुरक्षित रख पाता है। आवास वह पर्यावरण है जहां समाज की सबसे छोटी और आधारभूत इकाई-परिवार का विकास होता है तथा इसी जगह मानव का बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक का विकास सम्पन्न होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में घर के पर्यावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। यदि घर का वातावरण अच्छा नहीं है तो मनुष्य के व्यक्तित्व पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और विघटित परिवार के बच्चों में अपराध की प्रवृत्ति एवं अन्य समाज विरोधी कारक प्रकट होने लगते हैं। अच्छे घर के वातावरण से मनुष्य अपने कार्य को अधिक रुचि, परिश्रम तथा उत्साह से करने को प्रेरित होता है अन्यथा उसकी उत्पादन शक्ति का ह्रास होने लगता है।

घर अथवा आवास से केवल एक शरणालय का ही तात्पर्य नहीं है। आवास के अन्तर्गत आवश्यक सुविधाएं तथा सामुदायिक सेवाएं निहित होती हैं। आवास की कल्पना से ये सभी सेवाएं जुड़ी हुई हैं। आवास को इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए। अतः आवास वह गतिविधि है जिसमें आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति का समन्वय होता है। आवास कीस्थिति से किसी भी देश अथवा समाज की आर्थिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक प्रगति का तुरन्त मूल्यांकन किया जा सकता है।

इससे स्पष्ट है कि आवास व्यवस्था व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है जिसके सम्बन्ध में शासन व जनता की रुचि होना स्वाभाविक है। यह मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं में सबसे महत्वपूर्ण है और देश की विकास व उत्पादन सम्भाव्यताओं को विकसित करने के लिए अच्छी आवास स्थिति होना अपरिहार्य है।

यों तो विकसित अथवा सम्पन्न देश भी अपनी सम्पूर्ण जनसंख्या के लिए यह सुविधा जुटाने में सफल नहीं हो सके हैं किन्तु विकासशील देशों के लिए जिनमें भारतवर्ष भी सम्मिलित है यह समस्या विकराल रूप ले चुकी है और आवास की कमी इस सीमा तक बढ़ चुकी है कि देश के समस्त संसाधनों को एकत्र करके इस ओर विनियोग करने से भी इसका समाधान सम्भव नहीं है। भारतवर्ष में 1961 में 6.58 करोड़ मकानों की कमी थी जो 1969 में बढ़कर 8.37 करोड़ हो गई। इनमें से 1.19 करोड़ मकान शहरी क्षेत्र में तथा 7.18 करोड़ मकान ग्रामीण क्षेत्र में कम थे।

हमारे देश में जनसंख्या की वृद्धि, औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण आवास में कमी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। गांवों से शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति ने शहरी आवास की समस्या को उग्रतर बना दिया है और बड़े शहरों में इसके कारण गन्दी बस्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है जहां बड़ी संख्या में लोग अमानवीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। शहरों की ओर भागने का कारण मुख्यतः रोजगार की तलाश है किन्तु अच्छी आवास व्यवस्था तथा जीवन की अन्य सुविधाओं का अभाव भी ग्रामीण जनता को शहरों की ओर आकर्षित करता है। अतः इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि गांवों में आवास की उपयुक्त व्यवस्था की जाए तथा अन्य आवश्यक सुविधाएं एवं सामाजिक सेवाएं उपलब्ध की जाएं। इसके बिना सम्यक् शहरी एवं क्षेत्रीय विकास सम्भव नहीं है। इस प्रकार आवास व्यवस्था का सम्बन्ध व्यापक परिप्रेक्ष्य में शहरी तथा क्षेत्रीय विकास से घनिष्ट रूप से जुड़ा है।

गांवों का जीवन अनियोजित विकास का ज्वलन्त उदाहरण है। यहां के मकानों में प्रकाश अथवा वायु की उपलब्धि का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। मानवीय सुविधाओं के विषय में कोई चेतना ग्रामीण जनता में नहीं उपजी है। सड़कों अथवा नालियों की कोई व्यवस्था नहीं है। अनाज के स्टोर अथवा मवेशियों के रहने के लिए भी कोई सुविधाजनक प्रबन्ध नहीं है। सभी का प्रबन्ध मिला-जुला है जिसमें मानव और पशु के आवास को भिन्न करना सम्भव नहीं है।

सामाजिक अथवा सामुदायिक सेवाओं का या तो पूर्णतया अभाव है या ये सेवाएं अपूर्ण एवं अकुशल हैं। पीने के स्वच्छ पानी की सुविधा भी पूरी तरह उपलब्ध नहीं है।

इस सबके अतिरिक्त बड़ी संख्या में गांवों में प्रति वर्ष बाढ़ से लाखों घर नष्ट हो जाते हैं और पुनः उन घरों का नए सिरे से निर्माण करना होता है। इस प्रकार दैवी विपत्ति तथा हमारे द्वारा उत्पन्न दुर्व्यवस्था ने भारतवर्ष के 5.60 लाख गांवों में देश की 83 प्रतिशत जनता का जीवन अशान्तिपूर्ण तथा असुविधाजनक एवं कष्टदायक बनाया हुआ है।

दूसरा पहलू

ग्रामीण जनसंख्या का केवल 2 प्रतिशत भाग ऐसा है जो पूर्णतया पक्के मकानों में रहता है अन्यथा 73 प्रतिशत व्यक्ति कच्चे मकानों में रहते हैं। इन कच्चे मकानों में कहीं पर दीवारें कच्ची अथवा फूस की बनी होती हैं या उन पर

छप्पर पड़ा होता है। कहीं-कहीं ईंटों की दीवार अवश्य होती हैं किन्तु उन पर प्लास्तर नहीं होता। जहां तक मकानों की दशा का प्रश्न है उनमें 28 प्रतिशत बुरी दशा में हैं तथा 7 प्रतिशत मकान मरम्मत करके ठीक कराए जा सकते हैं। गांवों में 73 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जिनके पास दो कमरों से अधिक का स्थान उपलब्ध नहीं है, 24 प्रतिशत ऐसे हैं जिनके पास 3 से 6 कमरे तक का मकान है तथा केवल 3 प्रतिशत के पास 6 कमरों से अधिक स्थान है।

ग्रामीण परिवारों में 25 प्रतिशत परिवारों में 6 से अधिक सदस्य हैं तथा 57 प्रतिशत में 3 से 6 सदस्य हैं। केवल 18 प्रतिशत परिवारों में 3 से कम सदस्य हैं। इस विवरण से यह भली भांति अनुमान लगाया जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की स्थिति का क्या स्वरूप है।

खेतिहर मजदूर

यह अनुमान लगाया जाता है कि हमारे देश में कुल 5.80 करोड़ व्यक्ति अनुसूचित आदिम जाति तथा विमुक्ति जाति के हैं जिनमें 2.15 करोड़ कृषि का धन्धा करते हैं तथा एक करोड़ भूमिहीन कृषक श्रमिक हैं। इनमें से अधिकांश श्रमिकों के पास आवास की कोई व्यवस्था नहीं है। इसी प्रकार अन्य धन्धों में लगे हुए लोगों में से बहुत से लोग बिना मकान के हैं।

इन व्यक्तियों को सम्मिलित करके हमारे देश में इस समय 1.05 करोड़ ऐसे परिवार हैं जिनके अपने मकान नहीं हैं और ये परिवार खेतिहर मजदूरी पर आश्रित हैं। इनमें से कुछ परिवार अस्थायी रूप से निर्मित ऐसे मकानों में रहते हैं जो सरकारी अथवा अन्य व्यक्तियों की भूमि पर अनधिकृत रूप से बनाए गए हैं। कुल मिलाकर इस समय 86.4 लाख परिवारों के लिए आवास की व्यवस्था आवश्यक है।

उपाय

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि समस्या इतनी वृहत् है कि इसका हल खोजना बहुत कठिन है और मकानों की कमी को शासन द्वारा पूर्ण करना असम्भव है। वैसे भी ग्रामीण आवास की समस्याएं शहरी आवास की समस्याओं से भिन्न हैं और उनका समाधान भी भिन्न तरीके से किया जाना चाहिए। ग्रामीण आवास की समस्या त्रुटिपूर्ण नियोजन अथवा बिना नियोजन के मकानों के निर्माण की समस्या है। इसके अतिरिक्त कुछ परम्परागत मूल्यों के कारण ग्रामीण जनता का दृष्टिकोण इस ओर से उदासीन सा है। इनके मस्तिष्क में अच्छे स्वास्थ्यजनक आवास के लाभों एवं उसके महत्वपूर्ण योगदान की कोई स्पष्ट रूपरेखा नहीं है जिसके कारण वे अच्छे डिजाइन का मकान बनवाने अथवा अन्य सुविधाएं जुटाने की ओर सक्रिय नहीं रहते। इसलिए यह अपरिहार्य है कि सर्वप्रथम ग्रामीण जनता में अच्छे आवास के प्रति चेतना उत्पन्न की जाए जिससे वे अपने लिए उक्त सुविधाएं जुटाने के लिए अनुप्रेरित हो सकें।

ग्राम्य जनता के वर्तमान दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में समाज शिक्षा एवं प्रचार के अन्य माध्यमों के द्वारा पर्याप्त प्रचार कार्य किया जाए। अच्छे घरों में जीवन यापन के लाभ तथा बुरे आवास की हानियों के सम्बन्ध में छोटे चलचित्र दिखाए जाएं। अतः हमारे जीवन मूल्यों में परिवर्तन के बिना इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, ग्रामीण आवास की समस्या का समाधान व्यापक परिप्रेक्ष्य में खोजना चाहिए। इसके लिए महत्वपूर्ण होगा कि ग्रामों के लिए भौतिक विकास योजना बनाई जाए तथा इस प्रकार की योजना का कार्यान्वियन भी वहीं की जनता के सहयोग से किया जाए। किन्तु यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि यदि बिना भौतिक विकास योजना के मकान बनाए गए तो उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा और भविष्य में उन्हें दोबारा बनवाना होगा। इस प्रकार बनाए गए मकानों से जीवन स्तर में भी सुधार की आशा नहीं की जा सकती क्योंकि अनियोजित विकास के साथ सुविधाओं एवं सेवाओं का प्रावधान सम्भव नहीं है। इस प्रकार गांवों की भौतिक विकास योजना बनाने से प्रत्येक गांव अपने क्षेत्र के नियोजित विकास में सक्रिय भूमिका निभा सकेगा।

भूमिहीन कृषक मजदूरों अथवा हरिजनों के लिए निःशुल्क आवास भूमि देने के लिए शासन द्वारा आवश्यक कदम उठाए जा रहे हैं तथा इस उद्देश्य से उन्हें ऋण अथवा अनुदान भी स्वीकृत किया जा रहा है। किन्तु यह योजना इसलिए पूर्णरूपेण सफल नहीं हो पाती है कि इसमें बहुत सी संस्थाएं अथवा संगठन कार्य करते हैं जिनमें समन्वय तथा सहयोग नहीं हो पाता है और इस प्रकार की धनराशि अनियोजित ढग से व्यय हो जाती है जिसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिए ग्रामीण आवास एवं सम्बन्धित समस्याओं को समग्र रूप से देखने के लिए यदि कोई एक ही संस्था बना दी जाए जिसे पूर्ण अधिकार हों तो बहुत ही उत्तम होगा। इसके लिए विभिन्न राज्यों में ग्रामीण आवास परिषद का गठन किया जा सकता है।

इन सब कार्यों के बावजूद इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए ग्रामीण आवास योजना को सामुदायिक विकास योजना का अभिन्न एवं महत्वपूर्ण अंग बनाना चाहिए। विकास खण्डों के माध्यम से इस ओर प्रचार एवं प्रसार का विशेष प्रयास होना चाहिए। कोई भी व्यक्ति यदि अपना नया मकान बनाने से पूर्व विकास खण्ड से निर्देशन एवं परामर्श प्राप्त कर सकता है तथा इसी प्रकार विकास खण्ड में आदर्श मकानों के डिजाइन तथा आदर्श गांवों के "ले आउट" भी उपलब्ध होने चाहिए जिनके आधार पर गांवों के विकास की योजना बनाई जा सके। ये आदर्श मकान स्थानीय सामग्री

से कम से कम कीमत में बने होने चाहिए।

पंचायतों का योगदान

किसी भी विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए स्थानीय नेतृत्व का योगदान तथा जनता का सहयोग आवश्यक है अन्यथा शासन की उपयोगी से उपयोगी योजना ऊपर से थोपी हुई रह जाती है तथा व्यक्तियों द्वारा वह स्वीकार नहीं की जाती है। ग्रामीण आवास योजना के लिए भी ग्राम पंचायतों को पूरी तौर पर तैयार करना होगा जो अपने गांवों के पुनर्विकास के लिए, अच्छे आवासों को बनवाने में तथा आवश्यक सुविधाओं एवं सेवाओं को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। अत पंचायतों को आधारभूत इकाई मानकर आवास योजना भी चलाई जानी चाहिए। भूतकाल में ग्रामीण आवास योजना में जो कठिनाइयां आई हैं उन्हें दूर करना आवश्यक है जिससे इस महत्वपूर्ण सामाजिक न्याय, सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के कार्यक्रम को सक्रिय रूप से चलाया जा सके।

आवास की नीति

शासन द्वारा आवास, शहरी एवं क्षेत्रीय विकास के सम्बन्ध में व्यापक नीति बनाने पर विचार किया जा रहा है जिसका दूरगामी प्रभाव होगा और इससे ग्रामीण आवास पूर्ति में महत्वपूर्ण सहायता मिलेगी। इस नीति से विकास कार्यक्रमों के सोपानात्मक संगठन में आवास को उचित वरीयता मिल सकेगी तथा अब तक जिस योजना को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा गया है उसे अब एक उत्पादक योजना के रूप में स्थापित करना सम्भव होगा। शासन द्वारा घोषित राष्ट्रीय नीति से क्षेत्रीय विकास का कार्यक्रम सक्रिय हो सकेगा और गांवों तथा शहरों के जीवन के मानदण्डों में असमानता अथवा विषमता को दूर करना सम्भव हो सकेगा।

नोट : उपर्युक्त लेख में सभी आंकड़े, जनगणना, नेशनल सैम्पिल सर्वे तथा आवास एवं शहरी विकास के कार्यकारी दल की रिपोर्ट पर आधारित हैं।

ऊंची तेरी शान है

ओमप्रकाश शर्मा

वा रे भारत देश गजब की
ऊंची तेरी शान है
तू ने दिखला दिया विश्व को
तेरी शक्ति महान है

याहिया ने जब होश गंवाया
नर-बलि में चंगेज लजाया
मौन देखता रहा विश्व, तब
तूने ही वह बिगुल बजाया

बंगला देश स्वतन्त्र आज है
जनता के ही शीश ताज है
तुझे मिला सम्मान है
सारा जग हैरान है।

तेरी उन्नति लाजवाब है
अब न अन्न का भी अभाव है
नित्य नए उद्योग बढ़ रहे
कृषकों को कृषि से लगाव है

अब तो तू आगे बढ़ता जा
सब अवरोधों से लड़ता जा
तुझको पथ का ज्ञान है
तेरा वचन प्रमाण है।

ग्राम पंचायतों की परम्परा

सत्य प्रकाश गुप्ता

"अच्छा और कुशल प्रशासन तभी सम्भव हो सकता है जब अधिक से अधिक लोग देश के मामलों के प्रबन्ध और निर्णय में भाग लें। मैं यह पसन्द नहीं करता कि कुछ उच्च अधिकारी लोग ही भारत जैसे विशाल देश पर अपना शासन करें। आप जिस दृष्टिकोण से भी देखें यह अच्छा ही होगा कि पंचायतें गांव का शासन चलाएं। उन्हें अधिक अधिकार और अधिक जिम्मेदारियां दी जानी चाहिए" पं० जवाहरलाल नेहरू के इन शब्दों ने ग्राम पंचायतों की लोकप्रियता को सम्बल दिया और उनकी उत्तरोत्तर प्रगति में सहायता पहुंचाई है। केवल कुछ राज्यों को छोड़कर शेष सभी राज्यों में अब पंचायती राज अधिनियम लागू हो गए हैं और ग्राम पंचायतों ने कार्य करना शुरू कर दिया है। विकास तथा स्थानीय प्रशासन सम्बन्धी विशेष अधिकार पंचायती राज संस्थाओं को सौंपे जा चुके हैं।

ग्राम पंचायतों का वर्तमान स्वरूप उनकी उत्तरोत्तर प्रगति की कहानी कहता है। हमारे देश में ग्राम पंचायतों की परम्परा बहुत प्राचीन काल से ही चली आ रही है। कहा जाता है कि इन्हें राजा पृथु ने प्रारम्भ किया था। इतिहास के पृष्ठ यह बताते हैं कि हमारे देश में ग्राम पंचायतों का अस्तित्व वैदिक काल में भी था। उस समय सारे देश में पंचायतों की भरमार थी। अपने कार्यक्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वे न केवल ग्राम में शान्ति बनाए रखने का कार्य ही करती थीं बल्कि जनता के आचार, व्यवहार, शिक्षा, व्यापार तथा अन्य कार्यों पर भी इनका नियन्त्रण था। पंचायतों का उल्लेख हमें जातक, रामचरित मानस, महाभारत तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र व अन्य पुरातन ग्रन्थों में मिलता है।

प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार सर चार्ल्स मैटकाफ ने इन संस्थाओं के विषय में लिखा है कि—"इन संस्थाओं ने भारतीय सामाजिक जीवन की स्थिरता तथा स्वतन्त्रता बनाए रखने में दूसरी सभी भारतीय संस्थाओं से अधिक सहयोग दिया है। भारत में राज्य बदले, एक शासन प्रणाली का अन्त हुआ, दूसरी का प्रादुर्भाव, कितने ही आक्रमणकारी आए, किन्तु भारत की इन ग्राम पंचायतों में वह शक्ति थी कि वे उन सब क्रान्तियों तथा परिवर्तनों के बीच स्थिर बनी रहीं और भारतीयों को उसी प्राचीन संस्कृति के सांचे में ढालती रहीं।"

प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतों तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं को 'श्रेणी' या 'गुणों' के नाम से जाना जाता था। इनमें जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते थे। गांव के प्रबन्ध में गांव सभा का बहुत बड़ा महत्व होता था। गांव के प्रायः सभी लोग सदस्यता का अधिकार रखते थे। गांव के प्रबन्ध के लिए एक समिति होती थी जिसका शासन मुखिया के हाथ में था। इस मुखिया को 'ग्रामणी' कहते थे। यह 'ग्रामणी' गांव शासन का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता था। 'तैत्तरीय संहिता', रामायण तथा महाभारत में भी 'ग्रामणी', 'ग्रामिक', तथा 'ग्राम योजक' को गांव के काम के लिए एक मुख्य व्यक्ति बताया गया है। स्मृति ग्रन्थों (मनुस्मृति) में भी गांव को शासन की सबसे छोटी इकाई माना है।

गांव के मुखिया का उल्लेख पहली सदी के बाद के शिलालेखों में मिलता है। गुप्त काल के लेखों में गांव के मुखिया के लिए 'महत्तर' तथा राष्ट्र कूट तथा शिलाहार वंश की प्रशस्तियों में 'ग्राम पति' शब्द का प्रयोग हुआ है। 600 ई० से 1200 ई० के बीच महाराष्ट्र में इसे 'ग्राम कूट' या 'पट्टकील', कर्नाटक में 'गावुन्द' तथा उत्तर भारत में 'महत्तकर' या 'महतक' कहा जाता था। राजराजा चौल प्रथम (985-1013) के एक शिला लेख से पता चलता है कि वहां चालीस गांवों की एक पंचायत थी जो उन सब गांवों का प्रबन्ध करती थी। चिंगल पट जिले के एक गांव के मन्दिर में पाए गए दो शिला लेखों से पता चलता है कि गांव का प्रबन्ध करने के लिए निम्नलिखित 6 समितियां होती थीं जो प्रधान पंचायत की अध्यक्षता में अपने अपने कार्य करती थीं—वार्षिक समिति, वाटिका समिति, तालाब समिति, स्वर्ण समिति, न्याय समिति तथा पंचवार समिति। इन समितियों के सदस्यों का चुनाव साधारण सभा द्वारा किया जाता था। इस सभा में बालक, वृद्ध सभी सम्मिलित होते थे परन्तु मताधिकार केवल युवकों को ही प्राप्त था। इस प्रकार सारी व्यवस्था एक प्रजातान्त्रिक ढंग पर आधारित थी।

ग्राम परिषदों तथा ग्राम पंचायतों को गांव के प्रबन्ध के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते थे जैसे भूमिकर वसूल करना, गांव के आपसी झगड़ों का निपटारा करना, गांव के मन्दिरों तथा अन्य धार्मिक स्थानों का प्रबन्ध करना। समाज कल्याण तथा जनता के हित के लिए ग्राम पंचायतों को बहुत से अन्य कार्य भी करने पड़ते थे। उदाहरण के लिए बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना। कुएं तथा नहरें खुदवाना, सड़कें बनवाना तथा उनकी मरम्मत कराना, सराय व धर्मशालाएं बनवाना।

पंचायतों की आज्ञाएं लोग अपनी इच्छा से पालन करते थे। उस समय अपराधी के लिए सबसे बड़ी सजा यह

होती थी कि समस्त गांव सामूहिक रूप से उसका बहिष्कार कर देता था। उस समय जातीय कर्त्तव्य और जनमत के प्रति आदर की भावना इतनी अधिक होती थी कि नियमों का उल्लंघन करना कोई समझता ही न था। दूसरी भावना जो ग्रामवासियों को इन पंचायतों की आज्ञाओं का पालन करने के लिए प्रेरित करती थी वह यह थी कि पंचों में परमेश्वर की शक्ति निवास करती है। इसी भावना के कारण लोग पंचों को बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे।

इस प्रकार वैदिक काल से मुगल काल तक पंचायतों की लोकप्रियता का वर्णन मिलता है। ग्राम पंचायतों की लोकप्रियता मुसलमान साम्राज्य में भी उसी भांति कायम रही। इन शासकों ने भी गांव का सारा प्रबन्ध ग्राम सभा के ही हाथ में रखना उचित समझा। शेरशाह तथा अकबर के समय में जन-कल्याण के लिए अनेकों कार्य किए गए परन्तु ग्राम सभाओं के कार्यों में कोई विशेष हस्तक्षेप नहीं हुआ।

अनेक राजनैतिक उथल पुथल के बावजूद लगभग उन्नीसवीं शताब्दी तक हमारे देश के शासन का आधार ग्राम पंचायतें ही थीं। परन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ साथ यह संगठन शिथिल हो गया जिसका प्रमुख कारण अंग्रेज शासकों का जमींदारों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना था। अंग्रेजों की केन्द्रीकरण की नीति के कारण सहस्रों वर्षों से चली आ रही ग्राम पंचायतें समाप्त कर दी गईं। परन्तु बाद में जब उन्हें अपनी गलती का आभास हुआ तो 1793 में ब्रिटिश संसद ने स्थानीय संस्थाओं के संगठन के लिए एक कानून बनाया। इसके पश्चात् 1842, 1850 तथा 1856 में दूसरे कानून बनाए गए जिसके कारण यह संगठन और अधिक व्यापक हो गया। इन पंचायतों के सदस्य शुरू शुरू में मनोनीत किए जाते थे परन्तु बाद में लार्ड मेयो ने 1873 में निर्वाचन पद्धति की नींव डाली। लार्ड रिपन ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किए। 1909 के शाही विकेन्द्रीकरण आयोग ने पंचायतों के पुनरुत्थान के लिए कुछ ठोस सुझाव दिए परन्तु उन पर तुरन्त कार्यवाही नहीं की गई।

1919 में मौंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के अन्तर्गत प्रान्तों में स्वायत्त शासन विभाग एक लोकप्रिय मन्त्री के हाथ में दे दिया गया और उसके बाद इस दिशा में बहुत से सुधार किए गए। 1920 में उत्तर प्रदेश में एक ग्राम पंचायत अधिनियम पास किया गया तथा उसके बाद बिहार और पंजाब में भी इस प्रकार के अधिनियम पास हुए। 1920 में ही कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर महात्मा गांधी का यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि अदालतों का बहिष्कार हो और ग्रामवासी अपने आपसी झगड़ों को पंचायतों में तय कर लिया करें। 1922 में कांग्रेस के गया अधिवेशन पर देशबन्धु श्री चितरंजन दास ने पंचायतों को शक्तिशाली बनाने पर बल दिया और शासन के समक्ष पंचायतों के पुनरुत्थान की एक पांच सूत्री योजना प्रस्तुत की।

देश के स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान भी महात्मा गांधी पंचायतों के विकास के लिए प्रयत्नशील रहे। वह पंचायतों को स्वतन्त्र भारत के शासन की आधारशिला बनाना चाहते थे। उनका कथन था कि जनतन्त्र तो ग्राम इकाई से प्रारम्भ होना चाहिए। इसीलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्राम पंचायतों को फिर से संगठित और विकसित किया गया।

ग्राम पंचायतों का वर्तमान स्वरूप यद्यपि प्राचीन काल की पंचायतों से सर्वथा भिन्न नहीं है तथापि आधुनिक पंचायतें ग्रामीण जनता के कल्याण के लिए एक विशेष संस्था के रूप में उभर कर सामने आई हैं। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लागू होने के साथ ही इन पंचायतों पर विशेष भार आ पड़ा है। ग्राम पंचायतों को अब केवल आपसी झगड़ों का निपटारा ही नहीं करना पड़ता बल्कि ग्रामवासियों के स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन तथा कल्याण के लिए भिन्न भिन्न कार्यक्रम आयोजित करने का उत्तरदायित्व भी उन पर है।

गांव में स्वास्थ्य की समस्या ··· [पृष्ठ 1 का शेषांश]

में स्वास्थ्य केन्द्र खुले भी हैं वहां डाक्टरों की सेवाएं उपलब्ध न होने के कारण उनका लाभ भी गांववालों को नहीं मिल पाता। इस समय देश में 165 स्वास्थ्य केन्द्र ऐसे हैं जहां डाक्टर है ही नहीं। ऐसी अवस्था में गांवों के बीमारों को नीम हकीमों की ही शरण लेनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में इस समय एक विषम स्थिति यह पैदा हो गई है कि जहां पहले गांवों के ये नीम हकीम चूर्णचटनी से रोग का इलाज करते थे वहां आज के डाक्टर नामधारी नीम हकीम एण्टी बायोटिक्स आदि भयंकर एलोपैथिक दवाइयों से रोग का इलाज करते हैं। फल यह होता है कि किसी का तुक्का बैठ गया तो ठीक वरना इन औषधियों के असम्यक् प्रयोग से रोगी बेमौत मरता है या जिन्दगी भर के लिए बेकार हो जाता है जबकि चूर्ण चटनी जैसी दवाइयों का स्वास्थ्य पर इतना बुरा असर नहीं होता था। यह स्थिति बड़ी भयावह है और इससे उबरने के लिए जरूरी है कि देश में इस समय जहां ग्रामीण प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या केवल 5,127 है और जो वास्तव में इतने बड़े देश के लिए ऊंट के मुंह में जीरे के समान है, देश की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए इनमें वृद्धि की जाए और डाक्टरों को गांवों में सेवा करने के लिए अनिवार्य रूप से बाध्य किया जाए। यह खुशी की बात है कि लोकसभा ने राष्ट्रीय सेवा विधेयक स्वीकार करके, जिसके अन्तर्गत भविष्य में एक खास आयु तक का जो भी मेडिकल का स्नातक होगा उसे अनिवार्यतः 4 वर्ष सेना या अन्य किसी राष्ट्रीय सेवा में लगाने होंगे, इस दिशा में एक सराहनीय कदम उठाया है।

कीट-व्याधियों और खरपतवारों से जूझता कृषिविज्ञान

हरित क्रान्ति ने समूचे विश्व में भुखमरी की समस्या का जवाब दे दिया है, समृद्धि के स्वप्न सौध पर वैज्ञानिक पहुंच गया है और ऐसा मालूम होता है कि यदि इसी रफ्तार से विज्ञान खेती की सेवा में लगा रहा तो अनाज की कमी का हौवा हमेशा के लिए दफना दिया जाएगा। परन्तु जहां किसान एक एकड़ से अब अनेक गुना अनाज पैदा करने लगा है वहां खेतों के दामन में पले दुश्मन-कीट-व्याधियां व खरपतवार मानव के यत्नों को बौना बना रहे हैं। भारत में ही लगभग 5 अरब रुपए का अनाज बजाए भूखे इन्सानों के हर साल कीड़ों के पेट में पहुंचता है। अगर हम कीट-व्याधियों व खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बच सके तो जिस रफ्तार से अनाज को पैदावार बढ़ रही है, इसमें शक नहीं कि हम जल्दी ही विदेशों को अनाज निर्यात कर सकेंगे।

बापू ने कहा था "मानव जीवन की रक्षा के लिए खेती को हानि पहुंचाने वाले प्राणियों को मारना अनिवार्य हिंसा है।" इस अनिवार्य हिंसा को वैज्ञानिकों ने एक नया आसान रूप दिया है। अब वैज्ञानिकों ने अनेक रासायनिक विधियों से कीट-व्याधियों व खरपतवारों की रोकथाम करनी शुरू की है। हाल में ही "जैवी नियन्त्रण" विधि ने इस दिशा में एक नया अध्याय जोड़ा है। इस विधि से फसल के दुश्मनों यानी कीट-व्याधियों, खरपतवारों, दीमकों, खरखोशों आदि की रोकथाम की जा सकती है। जिन रोगकारी कीटों आदि का दमन किया जाता है, वे हैं :--कीट, सूत्रकृमि, विषाणु, जीवाणु, फफूंद, मछली, घोंघा, जल-स्थलीय जन्तु, पक्षी।

अब वैज्ञानिकों को क्यों जैवी नियन्त्रण की तरकीब सूझी है? इसका कारण यह है कि कई रासायनिक दवाएं ऐसी हैं जिनके इस्तेमाल के कुछ कीट आदी हो गए हैं और उनके प्रयोग से वे नहीं मरते। इसके अलावा अनेक दवाओं में हानिकर तत्व पाए गए हैं। कभी-कभी रासायनिक दवाओं के प्रयोग के बाद प्रकृति में पाए जाने वाले शत्रुओं के विनाश के फलस्वरूप प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

अनेक रासायनिक दवाओं के बड़े पैमाने पर प्रयोग से वातावरण दूषित होता पाया गया है जिससे वैज्ञानिकों का चिन्तित होना स्वाभाविक है। जो कुछ हो, वर्तमान स्थिति ऐसी है कि सभी कीट-व्याधियों और खरपतवारों को रासायनिक दवाओं से खत्म करना सम्भव नहीं है और न इन्हें जैवी विधियों से ही नष्ट किया जा सकता है। इसलिए वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि रासायनिक दवाओं का तभी इस्तेमाल किया जाए जबकि अनिवार्य हो और साथ ही जैवी नियन्त्रण विधि को भी अपनाया जाए।

ब्रजलाल उनियाल

पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्रसंघ के खाद्य व कृषि संगठन के कुछ वैज्ञानिकों के एक दल ने जब मध्य अमेरिका, लैटिन अमेरिका व मध्य पूर्वी देशों का दौरा किया और इस बात का सर्वेक्षण किया कि रासायनिक दवाएं कहां तक कारगर और उपयुक्त हैं, तो परिणाम देखकर वे भौंचक्के रह गए। उन्होंने देखा कि कपास और अधिक उपज देनेवाली कई किस्मों की फसलें बरबादी के कगार पर इसलिए खड़ी हैं कि उनमें बहुत ज्यादा रासायनिक दवाओं का इस्तेमाल किया गया था। इन वैज्ञानिकों ने इस अध्ययन के फलस्वरूप जिस नतीजे को जन्म दिया उसे हम "समन्वित नियन्त्रण" की संज्ञा देंगे। यानी इन दवाओं को तब तक न दिया जाए जब तक कि अनिवार्य न हों। साथ ही खेती के सुधरे तौर-तरीकों और खेती के कीड़ों के प्राकृतिक शत्रुओं का भी फायदा उठाया जाए।

जैवी नियन्त्रण

कुछ कीट-व्याधियों का दूसरे कीट-व्याधियों से खत्म करने कराने का सिलसिला बड़ा पुराना है। यदि प्रकृति भी कीड़ों की वृद्धि न रोके तो कीड़ों की संख्या इतनी अधिक हो जाए कि पूरी दुनिया में दूसरे जीव न रह पाएं। प्रकृति ने जंगली चिड़ियों में कौआ, मैना, नीलकण्ठ, बुलबुल, उल्लू आदि कीट-भक्षी पैदा किए हैं। घरेलू पक्षियों में मुर्गी, बत्तख, तीतर आदि भी कीड़े खाते हैं। चिड़ियां दिनभर में करीब उतने ही वजन के कीड़े खाती हैं जितना कि उनका खुद का वजन होता है। एक जर्मन वैज्ञानिक का अनुमान है कि चिड़ियों का एक परिवार जिसमें एक ही बच्चा हो एक साल में कम से कम 12 करोड़ अण्डों को या 1 लाख 50 हजार कीट-डिम्बों को खा जाता है।

सन् 1873 में कीट-व्याधियों की रोकथाम के लिए एक नया आन्दोलन चला। अमेरिका ने जीवभक्षी दीमक (माइट) फ्रान्स को जहाज द्वारा भेजे ताकि वहां की अंगूर की फसल को फिलोक्जोरा से बचाया जा सके। इसी प्रकार सन् 1888 में कैलीफोर्निया में आस्ट्रेलिया से कुछ रोडोलिया कार्डिनेलिस कीट मंगवाए गए, जिनसे कोंटनी कुशन

स्केल (कपास का मखमली कीड़ा) कीट की रोकथाम में आशातीत सफलता मिली।

अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि फसलों की कीट-व्याधियों के प्राकृतिक शत्रु, जो देश में ही पाए जाते हैं, कारगर हैं पर यदि विदेशों से भी कुछ पर जीव भक्षी कीट आदि आयातित किए जाएं तो और भी लाभ होगा। पर यह काम बड़ी मेहनत व सावधानी का है। इसके लिए यह जरूरी है कि हर देश में उन कीटों का अध्ययन किया जाए जो वहां की फसलों के कीट-व्याधियों का सफाया करते हों। न केवल किसानों और वैज्ञानिकों बल्कि संग्रहालयों आदि से भी बड़े पैमाने पर वैज्ञानिक सूचनाएं जुटानी होंगी। साथ ही जिन देशों में आवश्यक सूचनाएं न मिलें वहां के वैज्ञानिक इस ओर ध्यान दें। कीट-विज्ञान वेत्ता इस सम्बन्ध में बहुत योग दे सकते हैं। अनेक वैज्ञानिकों ने इस दिशा में बहुत काम किया भी है। जब किसी उपयुक्त परजीव भक्षी का पता लगे तो उसकी शुद्ध कल्चर का संचय किया जाना चाहिए। पर ध्यान रहे कि वह परजीव भक्षी पराश्रयी से मुक्त हो। इस प्रकार के कल्चर-समूह को उन देशों को भेजा जाए जहां इनकी आवश्यकता हो।

इस सिलसिले में यह कहना प्रासंगिक होगा कि जैव नियन्त्रण राष्ट्र मण्डल संस्थान की विभिन्न शाखाएं जो कि भारत, पाकिस्तान, मलेशिया, युगाण्डा, घाना, स्विटजरलैण्ड, त्रिनिदाद और अर्जेण्टाइना में हैं, बड़ा उपयोगी काम कर रही हैं। इसके परिणामस्वरूप अब दुनिया भर के वैज्ञानिकों ने इनमें अधिक दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी है और 1969 में एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें विचार किया गया कि जैव नियन्त्रण का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन स्थापित किया जाए। आशा है कि ऐसा संगठन जल्दी ही जन्म लेगा।

दुश्मन का दुश्मन

यह भी तो सम्भव है कि आयात किए गए जीव उस देश के लाभकारी जीवों पर ही हमला बोल दें तो लाभ के बजाए हानि हो सकती है। इसलिए जरूरी है कि आयातित सामग्री को अलग-अलग स्थान पर प्रयुक्त किया जाए और पूरी सावधानी बरत कर इस बात को परखा जाए कि आयातित जीवभक्षी कीट विशेष की प्रजातियों पर ही हमला करते हैं और लाभकारी हैं।

इस प्रकार की जैवी सामग्री को विशेष विधि से निर्यात किया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि जैवी सामग्री बरबाद या प्रभावहीन न हो। इन्हें विशेष रूप से तैयार बक्सों में रखा जाता है। उन पर लेबिल चिपकाए जाते हैं जिन पर कस्टम अधिकारियों के लिए हिदायतें लिखी होती हैं।

रोकथाम

यों तो विभिन्न देशों में कीट-व्याधियों की रोकथाम के लिए अनेक प्राकृतिक उपाय अपनाए जाते हैं फिर भी कुछ का उल्लेख प्रासंगिक होगा।

आस्ट्रेलिया मूल का कपास का कीड़ा है इसिर्या परचेजी कहलाता है। इस कीड़े से तो अमेरिका के नींबू वर्गीय उद्योग को इतना नुकसान पहुंचा कि उससे पूरा उद्योग ही ठप्प होने का खतरा पैदा हो गया। खुशकिस्मती से इस कीड़े का प्राकृतिक शत्रु लेडी बर्ड गुबरैला (रोडोलिया कार्डिनेलिस) है। यह आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। आस्ट्रेलिया से इसे मंगाया गया और कुछ वर्षों में लेडी बर्ड गुबरैले ने काटनी कुशन का पूरी तरह सफाया कर डाला। इस प्रयोग से दूसरे देशों में भी लाभ उठाया गया। कुछ ही साल पहले भारत में भी इसे पाया गया और यहां भी काटनी कुशन का सफाया करने में कामयाबी मिली। अनेक देशों में सेब को रोमिल एसिफ नामक कीड़ा लगता था और यह उम्दा स्वास्थ्यकर फल आदमियों के बजाए कीड़ों के उदर में उतरता था। इसकी रोकथाम भी एफेलाइनस माली नामक एक छोटे भृङ्ग से की गई। भारत में भी इसे बड़ा कारगर पाया गया।

भारत के जैव नियन्त्रण राष्ट्र मण्डल संस्थान ने इस दिशा में काफी सराहनीय काम किया है। इस संस्थान ने चीन, अमेरिका, रूस आदि देशों से कीटनाशी परभक्षी जीव मंगवाए। इन्हें उत्तरप्रदेश के कुमाऊं, हिमाचल प्रदेश और कश्मीर में इस्तेमाल किया गया।

पिछले पच्चीस वर्षों से गन्ना छेदक कीड़ा एक विकट समस्या रहा है। इसे

पहले ट्राइकोग्रेमा नामक छोटे भृंग से नियन्त्रित करने की कोशिश की गई। विशेष रूप से बारबेडोस में प्रयत्न किए गए। भारत से बारबेडोस में ऐपेण्टेलीज पलेवीपेंस कीट भेजा गया। इस द्वीप में यह सब जगह फैल गया। सन् 1966 में इस परभक्षी जीव को पाया गया था। सन् 1967 से पहले इस गन्ना छेदक से 7.5 प्रतिशत हानि होती थी। इस हानि की मात्रा धीरे-धीरे घटने लगी यानी 1968 में 6.4 प्रतिशत, 1969 में 4 प्रतिशत और 1970 में केवल 3 प्रतिशत हुई। इस तरह सांख्यिकी अनुमान से प्रतिवर्ष 3 लाख डालर की बचत हुई। भारत का बंगलौर केन्द्र इस परभक्षी जीव को सफलतापूर्वक सप्लाई कर रहा है। गुरदासपुर गन्ना छेदक बहुत ज्यादा हानिकारक समझा जाता था, उसकी रोकथाम के लिए कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना ने एक छोटे परभक्षी जीव 'ट्रिकोग्रामापरकिन्सी' की सिफारिश की है। इसके प्रयोग सफल रहे हैं। मैक्सिको, ब्राजील, बुरमुडा तथा अनेक अन्य देशों में चारे की फसलों को लगने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए भी जैव नियन्त्रण का आश्रय लिया गया है।

आलू का एक कन्दभक्षी भृंग है, जिससे आलू की फसल को काफी हानि होती है। भारत के जैवमण्डल नियण्त्रण संस्थान ने दक्षिणी अमेरिका से इस कन्दभक्षी भृंग से बचाव के लिए कुछ कीटभक्षी परोपजीवी मंगाए हैं। पूर्वी आस्ट्रेलिया में कोपिडोसोमा उरूगुएनिक्स और लार्वा परजीवी एपेन्टेलीज सुबैण्डिनस और ऑगिल्स लैपीडस बड़े पैमाने पर बहुत कारगर साबित हुए हैं। आस्ट्रेलिया में इन परजीवियों से आलू की पैदावार बहुत बढ़ी है। भारत में भी बंगलौर के पास चिक्काबालापुर में इन परजीवियों से आलू की उपज बचाने में मदद मिली है। भारत के अन्य आलू उत्पादन क्षेत्रों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए।

अब धीरे-धीरे दुनिया भर के कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर जा रहा है। पहले पहल डटकी ने अमेरिका में जीवाणु बैसीलस पौपिलिई द्वारा जापानी गुबरैले की रोकथाम के प्रयोग किए। इस प्रकार अमेरिका में हाल के कुछ वर्षों में बैसिलस थूरिंगिएंसिस नामक जीवों को बड़े पैमाने पर फर्मों ने तैयार किया। विशेष रूप से पिछले 20 वर्षों में तो इस दिशा में बहुत प्रगति हुई है। इन परजीवी कीटाणुओं को मोटे तौर पर पांच वर्गों में बांटा गया है। पता चला है कि थाईलैण्ड के कुछ प्रगतिशील किसान गोभी के लूपर की रोकथाम के लिए परजीवी पेलिहैड्रोसिस विषाणु का सफलतापूर्वक प्रयोग करते हैं। ये विशेष जीवाणु अथवा विषाणु उन विशेष कीड़ों के ही शत्रु हैं, मनुष्यों, मुर्गियों या मवेशियों को कोई हानि नहीं पहुंचाते।

आर्थिक पहलू

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो० पाल डी बाश ने हाल में ही कुछ आंकड़े इकट्ठे किए हैं और सिद्ध किया है कि 60 से भी अधिक देशों में लगभग 110 किस्मों के विभिन्न कीटों की जैव नियन्त्रण द्वारा रोकथाम की गई है। उन्होंने इस प्रकार के 220 उदाहरण दिए हैं। कुछ प्रयोग तो शत प्रतिशत कामयाब रहे और कुछ आंशिक रूप से। अमेरिका में 20 भयंकर कीट व्याधियों की रोकथाम की गई। इन जैव नियन्त्रणों का पता लगाने व शोध करने में कभी तो 20-25 साल लग जाते हैं, तो कभी इससे अधिक। कहीं-कहीं तो कम समय में ही आशातीत सफलता मिली, जैसे न्यूजीलैण्ड में अनुसन्धान से केवल 3 वर्षों बाद ही निर्था-कोक्टेलिस मैसनिएला की रोकथाम का जैवनियन्त्रण उपाय हाथ लग गया। इस सम्बन्ध में डा० साइमन्ड्स ने लिखा है कि सन् 1928 से लेकर 1963 तक उक्त मण्डल ने अपनी सभी गतिविधियों पर 10 लाख पौण्ड खर्च किए। इसमें 7 सफल परियोजनाओं के परिणामस्वरूप खेती को लगभग 50 लाख पौण्ड का फायदा हुआ और हर साल 2.5 लाख पौण्ड का व्यय हो रहा है। अभी तो शुरूआत है, इसका भविष्य उज्ज्वल है। इसी प्रकार कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय का सन् 1923 से 1959 का बजट 42.50 लाख डालर का था। इन वैज्ञानिक शोधों के परिणामस्वरूप उक्त अवधि में 11 करोड़ 50 लाख डालर का लाभ हुआ। इसके बाद भी लगभग 1 करोड़ डालर की सालाना बचत हुई है।

इस प्रकार विज्ञान की इस नवीनतम शोध ने भूखमरी की लड़खड़ाती काया को एक और जोर का धक्का लगाया है। निश्चय ही इसका भविष्य उज्ज्वल है।

भूमि तथा जल संरक्षण में वनों का महत्व

बैजनाथ द्विवेदी और गंगाशरण सैनी

वनों का हमारे दैनिक जीवन में विशेष महत्व है। वनों से न केवल दैनिक जीवन में उपयोग आने वाली वस्तुएं प्राप्त होती हैं बल्कि भूक्षरण रुकता है, भूस्खलन की सम्भावना कम होती है, तापक्रम परिमित होता है तथा बाढ़ संयमित होती है। वस्तुतः सत्य तो यह है कि वनों के बिना मनुष्य-जाति के अस्तित्व की कल्पना भी कठिन है। भारत में वनों एवं वनरोपण का वर्तमान परिस्थितियों में विशेष महत्व है। एक ओर उत्तरी-पूर्वी भाग प्रतिवर्ष बाढ़ के प्रकोप से ग्रसित होता है, हजारों व्यक्तियों को जन-धन की हानि उठानी पड़ती है, भूखमरी एवं बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है तो दूसरी ओर दक्षिणी-पश्चिमी भाग सूखे की चपेट में आने के लिए बाध्य होता है। यदि हम मिस्र, बेबीलोन, मेसापोटामियां, हड़प्पा, मोहनजोदारो आदि प्राचीन संस्कृतियों की भांति अपनी तथाकथित 'समुन्नत संस्कृति' को लुप्त होने से बचाना चाहते हैं तो हमें वनों एवं वनरोपण के तत्कालीन एवं दूरगामी प्रभावों को भली-भांति समझना होगा।

भूक्षरण क्यों ?

वनों के महत्व को समझने के पूर्व हमें भूमि संरचना एवं भूक्षरण के कारणों को जानना अति आवश्यक है। वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि 1 इंच मिट्टी बनने में 300 से 1000 वर्ष तक लगते हैं परन्तु यदि भूमि वनस्पतिहीन हो तो 1 इंच मिट्टी 1 घंटे से भी कम समय में खोई जा सकती है। भूक्षरण के निम्न प्रमुख कारण हैं—

(अ) पहाड़ों एवं पठारों से जो कि अधिकांश नदियों के उद्गम-स्थल होते हैं, जन-संख्या, कृषि, जलाशय, रेलों, सड़कों तथा औद्योगिकरण के लिए उनके वनस्पतिविहीन करने के कारण मिट्टी तेज वर्षा में कट-कट कर अधिक गति से जल के साथ बह जाती है।

(ब) समोच्च टरेस के समानान्तर खेती न करना, भूक्षरण-वर्धक फसलें उगाना, ढलानों में खेती करना, जल-निकास की समुचित व्यवस्था न होना आदि कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे भूक्षरण को बढ़ावा मिलता है।

(स) जहां भी आग लगती है वहां की वनस्पति नष्ट हो जाती है तथा भूमि का कटाव तेज हो जाता है। जहां पर भूस्तर बालुका पत्थर या बालुका चट्टान का बना होता है वहां वनस्पति के नष्ट होने पर समूचा बालुका-पहाड़ पानी पड़ने पर ढहकर समतल उपजाऊ भूमि पर छा जाता है जिससे भूमि अनुपजाऊ हो जाती है।

(द) अत्यधिक तथा अनियन्त्रित चराई से भी भूक्षरण होता है। पशुओं के चराने से वनस्पति का ह्रास होता है, पशुओं के खुरों द्वारा बार-बार कुचले जाने पर भूमि कठोर हो जाती है, जिससे भूमि द्वारा जल शोषण तथा संचय करने की क्षमता बहुत ही कम हो जाती है, भूमि-गत-अपवाह बहुत कम हो जाता है पर सतह-अपवाह बढ़ जाता है, पानी तेज गति से तथा धाराप्रवाह बहने लगता है, जगह-जगह गड्ढे बन जाते हैं और भूक्षरण की गति तीव्र हो जाती है।

(य) सामान्यतः वनों में या वनों के निकट जन-जातियां रहती हैं। ये जन-जातियां खेती की भूमि को बदलती रहती हैं। ये लोग नए भूमि खण्ड पर खेती शुरू करते हैं, और दो-तीन वर्षों के बाद उस भूमि को छोड़कर दूसरे स्थान पर नए सिरे से खेती करने लगते हैं। इस प्रकार की वनस्पतिहीन भूमि जो कि अधिकतर ढलानों में स्थित होती है, तेज वर्षा होने पर जल के वेग से कटती रहती है।

(र) स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक जलाशयों, सड़कों आदि के निर्माण के लिए वनों तथा भूमि का कटान किया गया है। भूमि-संरक्षण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण ढीली मिट्टी के ढूह क्षरण के प्रमुख स्रोत बन जाते हैं। भूचाल, भूस्खलन आदि अन्य प्राकृतिक प्रकोपों से भी क्षरण होता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् जन जीवन के स्तर को ऊंचा करने एवं समाजवादी समाज व्यवस्था स्थापित करने के लिए अरबों रुपए लगाकर बहूद्देशीय परियोजनाएं चालू की गई हैं और की जा रही हैं। अनेक बांधों एवं जलाशयों का निर्माण किया गया है जिन्हें स्वर्गीय जवाहर लाल नेहरू ने 'आधुनिक मन्दिरों' की संज्ञा दी थी। निस्संदेह इन बांधों एवं जलाशयों के निर्माण से धरती के बहुत बड़े भाग की प्यास बुझी है, प्रकृति पर निर्भरता कम हुई है, बिजली के उत्पादन से बहुत सी मिलों एवं कारखानों की स्थापना सम्भव हुई है जिससे "हरित क्रान्ति" एवं लाखों की संख्या में रोजगार देना प्रतिफलित हुआ है। जीवन-स्तर सुधारने में इन परियोजनाओं का योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण है। वर्तमान एवं भविष्य में हमें अधिक तीव्रता से प्राकृतिक साधनों का उपयोग जीवन-स्तर को उन्नत बनाने के लिए करना है, परन्तु इस विकास में बाधक दो प्रमुख कारण हैं : बढ़ती हुई जन-संख्या एवं

भूक्षरण। प्रस्तुत लेख में केवल भूक्षरण की समस्या पर ही विचार किया गया है।

भूक्षरण के कारण जलाशयों में साद जमा होती है जिससे उनकी संचायक-क्षमता का निरन्तर ह्रास होता रहता है और उपयोगिता शनैः शनैः कम हो जाती है। सिंचाई एवं बिजली का उत्पादन घटता जाता है। इन सब का जन-जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। केन्द्रीय सिंचाई एवं विद्युत परिषद द्वारा किए गए विभिन्न जलाशयों के क्षमता सर्वेक्षण (Capacity Surveys) से पता चलता है कि जलाशयों में साद जमा होने की गति अनुमानित गति से 2 से 3 गुणा अधिक है और कुछ में तो यह 6 गुणा तक है। दामोदरघाटी परियोजना के पंचेट तथा मैथान बांध, निजाम सागर, गोविन्द सागर आदि जलाशयों की क्षमताओं में अल्पकाल में भारी अवसादन के कारण विशेष कमी हुई है। जलाशयों में भारी अवसादन जमा होने का कारण उनके वाह-क्षेत्र में वनों का विनाश है। वनों के कटने एवं भूक्षरण से हुए विनाश का ज्वलन्त उदाहरण पंजाब का होशियारपुर जिला है जहां हजारों हैक्टर उर्वरा भूमि शिवालिक की नंगी बालुकामय पहाड़ियों से बहकर आई बालू की कई फीट मोटी तह से ढंक जाती है। ऐसी भूमि खेती के लिए सर्वथा अनुपयुक्त होती है और इसे 'रिक्लेम' करने में धन, जन एवं समय नष्ट करना पड़ता है। वनों के विनाश के कारण अधिक वर्षा वाले प्रदेश असम में 1971 में सूखा पड़ा। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल एवं उड़ीसा को बाढ़ के कारण अपार क्षति हुई है। यूरोप, अमेरिका तथा रूस में किए गए प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि अधिकांश बाढ़ मनुष्यों द्वारा वनों के विनाश करने का दुष्परिणाम है और इन्हें समुचित वनरोपण द्वारा बहुत कुछ सीमित किया जा सकता है। राजस्थान का मरुस्थल उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा के समीपवर्ती क्षेत्र में फैलता जा रहा है। भारत के सुन्दरतम प्रदेश केरल में प्रतिवर्ष हजारों हैक्टर तटवर्ती भूमि कटकट कर समुद्र में समा रही है क्योंकि हमने प्रकृति के साथ खिलवाड़ करके उसे नष्ट भ्रष्ट किया है; धरती को निरावरण किया है।

वनों के महत्व को पहचानते हुए 1952 में सर्वांगीण वन-नीति बनाई गई थी जिसमें वन क्षेत्रों की कमी एवं विभिन्न भागों में असमानता अनुभव की गई तथा इस कमी को दूर करने के लिए पहाड़ी भागों में 60%, मैदानी भागों में 20% और कुल भौगोलिक क्षेत्र का 33% भाग वनों के लिए सुरक्षित रखने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। परन्तु केवल 20% भू-भाग में ही वन हैं। इस 20% में ही जलाक्रान्त (Water logged), लोनी, क्षारीय एवं ऊसर मृदाएं, अनाच्छादित पहाड़ एवं पठार, जलाशयों में निमग्न क्षेत्र आदि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, बड़े भाग में लोगों का अतिक्रमण है। इस प्रकार वनों का वास्तविक क्षेत्र 15% से भी कम बैठेगा। इस क्षेत्र को भी नई-नई परियोजनाओं, रेलों, सड़कों, कल कारखानों, खदानों एवं विस्थापितों को बसाने के लिए साफ किया जा रहा है। वस्तुतः हम इस गलत विचारधारा के शिकार हैं कि हमारे पास अतुल वन-सम्पदा है, जबकि वास्तविक स्थिति इसके ठीक विपरीत है। जहां उत्तरी अमेरीका के 33%, मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका के 38.9%, यूरोप के 41%, रूस के 4:% तथा जापान के 67% भू-भाग में वन हैं, भारत का वन-क्षेत्र 20% ही है। हमारे अधिक मैदानी भागों में ईंधन की इतनी कमी है कि गोबर, पत्तियों तथा झाड़-झंखाड़ आदि को खाद के रूप में प्रयोग न करके जलाने के काम में लाते हैं। गोबर का ईंधन के रूप में प्रयोग अन्न को जलाकर भोजन पकाने के समान है।

वनरोपण का महत्व

भूमि एवं जल संरक्षण में वनो विशेष महत्व है। वृक्षों के द्वारा भूमि का कटाव रुकता है क्योंकि वर्षा की बूंदें सीधी भूमि पर न पड़कर वृक्षों पर पड़ती हैं, फिर भूमि पर पड़ती हैं जिससे संघात कम हो जाता है और भूमिकण अलग-अलग होकर बिखरते नहीं। बहता हुआ पानी पेड़ों से टकरा कर गति खो देता है जिससे उसकी क्षरण क्षमता बहुत ही सीमित हो जाती है। पत्तियों के गिरने एवं सड़ने से भूमि उर्वर होती है तथा भूमि की जल शोषण एवं संचय क्षमता में वृद्धि होती है। दक्षिणी कैरोलिना में किए गए प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि वन-भूमि में कुल वर्षण (Precipitation) का 90-95% भूमिगत अपवाह तथा 5-10% सतह अपवाह के रूप में था जबकि घास के मैदानों में 80% सतह-अपवाह तथा 20% भूमिगत अपवाह था। नग्न क्षेत्रों में केवल 10-35% भूमिगत अपवाह था तथा 60-80% सतह अपवाह तथा 5-10% खड्डी द्वारा जल निकास था। वास्तव में प्रत्येक वृक्ष छोटा-मोटा बांध होता है। ऐसा अनुभव किया गया है कि वनों वाले क्षेत्र में वर्षा अधिक तथा अधिक समय तक समान रूप से होती है। इसके विपरीत जहां वन नहीं हैं वहां वर्षा अनिश्चित, अचानक तथा अधिक परिमाण में होती है। वर्षा के बाद सूखे का लम्बा अन्तराल आता है। वृक्ष वायु मण्डल से नमी सोखते हैं, तापक्रम परिमित करते हैं, बादलों को आकर्षित करते हैं जिससे वर्षा अधिक होती है तथा भूमि में नमी अधिक समय तक ठहरती है। रेगिस्तान में वायुरोधक वृक्ष पट्टियां लगाकर कि
प्रकार खेतों को तेज हवा के
साथ बहने वाली रेत से
सकता है इसे वहां के
जानते हैं।
यह देख
व

पट्टियां (Shelter Belts) लगाकर बचाया जा रहा है। सागर के थपेड़े भी वनों द्वारा ही सफलतापूर्वक झेले जाते हैं। जलाशयों को भरपूर जिन्दगी प्रदान करने और अवसादन की मात्रा कम करने में वनों का विशेष स्थान है। इसके अतिरिक्त वनों से फल, फूल, इमारती लकड़ी, ईंधन, रेलवे स्लीपर, कागज, दियासलाई, रेयोन, पेपर बोर्ड, प्लाई-वुड, फर्नीचर, रेजिन आदि तैयार करने का कच्चा माल, जड़ी-बूटियां प्राप्त होती हैं। हजारों लोगों को रोजी-रोटी मिलती है। वन जंगली जानवरों एवं जन-जातियों के आश्रयदाता हैं। वृक्ष दूषित वायु का शोषण करके आक्सीजन बहुल वायु निकालते हैं। प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि एक टन लकड़ी की वृद्धि के लिए 1.5 टन कार्बन डाईआक्साईड शोषित की जाती है तथा 1.1 टन आक्सीजन निकाली जाती है। इस प्रकार वायु मण्डल का शुद्धिकरण होता है। वन सुन्दरता के अक्षय भण्डार हैं। सामान्य जनता को वनों एवं वनरोपण के महत्व को समझाने एवं उसका सहयोग प्राप्त करने के लिए स्वर्गीय श्री क० मा० मुंशी ने प्रति वर्ष "वन महोत्व" मनाने की परम्परा डाली तथा "वृक्ष माने जल, जल माने भोजन, भोजन माने जीवन" का नारा दिया।

गत बीस बाईस वर्षों में भूमि एवं जल संरक्षण में वनों के महत्व को कुछ-कुछ समझा जाने लगा है परन्तु वनों के निकट एवं मध्य रहने वाले अधिकांश जन-साधारण वनों की महत्ता से लगभग अनभिज्ञ है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने वर्तमान वन क्षेत्र को न केवल स्थिर रखें अपितु 1952 की राष्ट्रीय वन नीति द्वारा निर्धारित लक्ष्य जिसके अनुसार देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33% भाग में वन होने चाहिए, को पूरा करने की प्राणपण से चेष्टा करें। यह तभी सम्भव हो सकता है जब समस्त बंजर भूमि तथा खेती के अयोग्य सीमान्त भूमि का बड़े पैमाने पर वनरोपण किया जाए। स्थिति की भयंकरता तथा वनों के तत्कालीन एवं दूरगामी प्रभावों एवं लाभों को देखते हुए हमें वनरोपण के लिए आवश्यक साधन जुटाने होंगे। साथ ही ग्राम जनता को वनों के बहुमुखी प्रभावों से परिचित कराना होगा। वनों के संरक्षण एवं संवर्धन में उसका सक्रिय सहयोग प्राप्त करना होगा। यदि हम समय रहते सचेत न हुए तो हमारा अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा क्योंकि अग्निपुराण में कहा गया है :

"दशकूपसमो वापी, दशवापिसमो हृदः।
दशह्रदसमः पुत्रः, दशपुत्रसमो द्रुमः॥

★

सहयोगियों की राय

पंचायती चुनाव

उत्तर प्रदेश में पंचायतों तथा ग्राम-सभाओं के चुनावों में अभी तक सात व्यक्तियों के मारे जाने तथा बहुतों के घायल होने की खबर है। पहले भी ऐसे चुनावों में हिंसात्मक कांड हो चुके हैं। यह बहुत खेद तथा लज्जा की बात है कि स्वाधीनता-प्राप्ति को पूरे पचीस वर्ष होने को आ गए लेकिन हिंसा तथा द्वेष की जड़ें जन-जीवन से नहीं उखड़ी है। गांधीजी सच्चे, स्वराज्य को "पंचायती राज" कहते थे। पंचों को "परमेश्वर" इसीलिए कहा जाता रहा है कि उनसे पूर्ण निष्पक्षता, न्याय तथा जन-कल्याण की अपेक्षा की जाती है। लोकतन्त्र का विकेन्द्रीकरण तभी हो सकता है—दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि सत्ता जनतम स्तर तक तभी पहुंच सकती जब कि पंचायतें जनतन्त्र की शक्ति चिता का साधन बन जाएं।

अभी जैसी स्थिति है उसे देखते हुए चिन्ता तथा निराशा ही उत्पन्न होती है। पंचायतों तथा ग्राम सभाओं का कार्य असन्तोषजनक रहा है। कई स्थानों में तो ग्रामों के मध्य विवाद दूर होने के बदले उनके माध्यम से नया मनमुटाव पैदा हुआ हैं। अतएव सबसे पहले तो यह जरूरी है कि पंचायतों तथा ग्राम सभाओं के चुनाव पूर्ण शान्ति तथा भाईचारे की भावना से हों। शासकों का भी कर्त्तव्य है कि वे इन चुनावों के अवसर पर विशेष सतर्कता बरतें। गांवों में जिन लोगों को बन्दूकों के लाइसेन्स मिले हुए हैं उनसे चुनावों के कुछ दिन पूर्व कतिपय दिनों के लिए बन्दूकें वापस ले लेनी चाहिएं। लेकिन मुख्य बात तो मतदाताओं पर ही निर्भर है। उन्हें शान्ति तथा सहिष्णुता को पूरी तरह अपनाना है।

लोकतन्त्र के भवन का आधार ये स्थानीय संस्थान ही हैं। यदि यही कमजोर रहे तब जनतन्त्र की इमारत हो किस तरह बहुत मजबूत रह सकेगी ?

पंचायतों तथा ग्राम सभाओं के दूषित वातावरण का असर विधान सभाओं तथा संसद् के चुनावों पर भी पड़ सकता है। पंचायती चुनावों को जातिगत भावना तथा व्यक्तिगत झगड़े प्रभावित करते हैं। राजनीतिक दलों का भी इनके उकसाने में किसी हद तक हाथ रहता है। यह स्थिति बहुत खतरनाक है। इसे दूर करने में योग देना प्रत्येक राष्ट्र-हितैषी का कर्त्तव्य है। सन्त विनोबा भावे ने एक बात बहुत मार्के की कही थी कि पंचायती चुनाव सर्वसम्मति से ही हों। यदि ऐसी व्यवस्था हो सके तब तो पंचायतों के कार्य में भी न्याय तथा जन-हित भली भांति समाविष्ट हो सकते है।

—नवभारत टाइम्स

छोटे किसानों व खेतिहर श्रमिकों की समस्याएं

जगदीश शरण गुप्ता

संसार में भारतवर्ष का स्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से सातवां तथा जनसंख्या में दूसरा है। भारत में 82 प्रतिशत जनसमुदाय ग्रामों में रहता है। दूसरे शब्दों में भारत में 6 व्यक्तियों में 5 व्यक्ति ग्रामों में रहते हैं। ग्रामों में 75 प्रतिशत से भी अधिक लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार से कह सकते हैं कि ग्रामीण क्षेत्र में 4 व्यक्तियों में से 3 व्यक्ति कृषि के व्यवसाय पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। भारत में औसत भूमि प्रति व्यक्ति 2.6 हैक्टर है। छोटे किसानों से तात्पर्य उन किसानों से है, जिनके पास 2.50 एकड़ से 5 एकड़ भूमि है।

भारतवर्ष में छोटे किसानों की संख्या काफी है। भारत में छोटे किसानों की संख्या कुल ग्रामीण छोटे परिवारों का 52 प्रतिशत और श्रमिकों की संख्या का 24 प्रतिशत है। 62 प्रतिशत कृषक परिवारों के पास 2 हैक्टर भूमि से भी कम है।

खेतिहर मजदूरों से तात्पर्य उन मजदूरों से है जिनके पास खेती करने के वास्ते भूमि नहीं होती है और वे अपना जीवन निर्वाह खेतों पर मजदूरी करके करते हैं। अधिकांश छोटे जोत के किसान गरीबी में अपना जीवनयापन कर रहे हैं। आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से यह लोग काफी पिछड़े हैं। अधिकांश छोटे किसानों को वर्ष में 6 माह भी पर्याप्त रोजगार के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं। मौसम के अनुसार इनको कार्य मिलता है।

हरित क्रान्ति का लाभ छोटे किसानों को नहीं मिला है। देश के आर्थिक विकास में छोटे किसानों का अपना एक विशेष महत्व है। आज छोटे किसानों के सामने अनेक समस्याएं हैं। छोटे किसानों की मुख्य समस्याएं नीचे दी जा रही हैं—

1. छोटी आकार की जोत का होना तथा छिटका और बिखरा होना।
2. पट्टे की सुरक्षा न होना अर्थात् स्वामित्व का स्थायी न होना।
3. कृषि के लिए उन्नत बीज, उर्वरक और पानी पर्याप्त मात्रा में समय पर न मिलना।
4. समय पर ऋण तथा वित्तीय सहायता का न मिलना।
5. भण्डार और हाट की व्यवस्था का न होना।
6. आधुनिक कृषि साधनों से वंचित होना।
7. खाली समय में रोजगार का उपलब्ध न होना।
8. पशुओं का अभाव तथा लघु उद्योगों का अभाव।

उपरोक्त समस्याओं के कारण छोटे किसान की पैदावार बहुत कम होती है तथा उसकी आर्थिक दशा बड़ी ही शोचनीय रहती है। उपरोक्त कारणों से ग्रामीण क्षेत्रों में काफी विषमता व्याप्त है।

सरकारी प्रयास

भारत में सबसे ज्यादा छोटे किसान और खेतिहर मजदूरों की संख्या केरल, बिहार, तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल में है। जम्मू व कश्मीर, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश तथा असम में भी छोटे किसान और कृषि मजदूर काफी संख्या में पाए जाते हैं।

भारत सरकार छोटे किसानों के विकास के लिए काफी प्रयत्नशील है। ग्रामीण रोजगार योजना के अन्तर्गत सरकार ने कैश स्कीमों को चालू किया है। सहकारी साख समितियों की ऋण देने की नीतियों में भी परिवर्तन किया गया है। लघु सिंचाई के कार्य छोटे किसानों के लिए शुरू किए गए हैं। पशु खरीदने के लिए छोटे कृषकों को ऋण देने की व्यवस्था है। चौथी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण विकास कार्यों पर 100 करोड़ रुपया व्यय करने का प्रावधान है। इन विकास कार्यों में सिंचाई, भूक्षरण, चारा उत्पादन, वनों का लगाना तथा सड़कों का निर्माण कार्य सम्मिलित है। चौथी योजना में छोटे किसानों की विकास एजेन्सियों को 67.5 करोड़ रुपए व्यय करने का प्रावधान केन्द्रीय मद के अन्तर्गत रखा गया है। रिजर्व बैंक तथा व्यापारिक बैंक भी छोटे किसानों को ऋण देने में अपना पूरा योगदान कर रहे हैं। चौथी योजना में बारानी खेती के विकास को भी महत्व दिया गया है तथा तालाब और नलकूपों के निर्माण के वास्ते भी काफी धन राशि की व्यवस्था की गई है। 45 चुने हुए जिलों में विशेष परियोजनाएं भी चालू की गई हैं। इन जिलों में छोटे किसानों के लिए एक विकास एजेन्सी भी स्थापित की जाएगी। छोटे किसानों के विकास के सम्बन्ध में मेरे कुछ सुझाव इस प्रकार हैं—

सुझाव

1. छोटे किसानों को समय पर उन्नत बीज, खाद दिया जाना चाहिए।
2. छोटी जोतों की चकबन्दी की जाए और उनपर खेती कराई जाए।

3. लघु सिंचाई के लिए ऋण दिया जाए।
4. अनाज आदि रखने के वास्ते भण्डार की सुविधाएं दी जाए।
5. छोटे किसानों की सहकारी समितियाँ स्थापित की जाए और इनकी उपज को उचित मूल्य पर विक्रय कराने में सहायता दी जाए।
6. आधुनिक कृषि यन्त्र किराए पर दिए जाएं।
7. प्राथमिक सहकारी ऋण समितियों को समय पर छोटे किसानों को ऋण देने की सुविधाएं देनी चाहिए। प्राथमिक सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता व्यापारिक बैंकों से प्राप्त होनी चाहिए।
8. खरीफ तथा रबी दोनों फसलों के लिए ऋण की सुविधाएं समय पर दी जाए।
9. छोटे किसानों को ट्रैक्टर, विद्युत पम्प तथा तेल के पम्प लगाने के वास्ते अनुदान व ऋण की सुविधाएं समय पर दी जाएं। कुएं खोदने के वास्ते भी ऋण दिया जाए।
10. मुर्गी पालन, दुग्ध पालन व्यवसाय तथा कुटीर उद्योगों की स्थापना के लिए अनुदान तथा ऋण दिया जाए।

खेतिहर मजदूर

1961 की जनगणना के अनुसार भारतवर्ष में खेतिहर मजदूरों की संख्या 3 करोड़ 10 लाख थी। देश की आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था में कृषि श्रमिक एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी समस्याएं दो प्रकार की है। पहली समस्या आर्थिक है तथा दूसरी सामाजिक। ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में कृषि श्रमिक एक बहुत ही निम्न स्थान रखता है। ये लोग पिछड़ी जाति के होते हैं। प्रायः ये लोग हरिजन और आदिवासी होते हैं। इनकी सामाजिक समस्या अस्पृश्यता की भी है। उच्च जाति के लोग इनसे दुर्व्यवहार करते हैं। अधिकतर ये लोग भूमिहीन हैं तथा मजदूरी के लिए दूसरे के खेतों पर कार्य करते हैं। यदि कुछ मजदूरों के पास जमीन होती है तो वह बहुत कम होती है। इससे उनके परिवार के लोगों का गुजारा नहीं हो पाता है। इन परिस्थितियों में उन्हें दूसरों के खेतों पर काम करना पड़ता है। आचार्य विनोबा भावे ने इस गम्भीर समस्या पर काफी ध्यान दिया तथा गांव-गांव घूम कर भूमिहीनों को भूमि बांटी।

इनकी आर्थिक दशा को दो ही तरह से सुलझाया जा सकता है। एक तो उन्हे साल भर रोजगार दिया जाए और उनकी मजदूरी में वृद्धि की जाए। दूसरे कृषि के वास्ते भूमि दी जाए।

चौथी योजना में कृषि श्रमिकों के विकास के लिए 47.50 करोड़ रुपए का प्रावधान है। 41 परियोजनाएं इनके सम्बन्ध में लागू की जाएंगी। 33 परियोजनाएं चालू की जा चुकी हैं।

छोटे कृषकों, लघुतम कृषकों तथा खेतिहर मजदूरों को रोजगार देने के लिए इस वर्ष से "ग्रामीण औद्योगिक परियोजनाएं" चालू की जा रही हैं। छोटे कृषकों तथा कृषि मजदूरों के प्रतिनिधियों की समय समय पर बैठक बुलानी चाहिए तथा उनका सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों को कृषि ऋण देने की एक संगठित सेवा आरम्भ करने की सिफारिश की है।

देश का विकास छोटे किसानों और मजदूरों के विकास पर ही निर्भर करता है। इनकी आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति करने का दायित्व समाज और राष्ट्र दोनों का है।

18 लाख किसानों को प्रशिक्षण

केन्द्र द्वारा 1966-67 में चलाए गए किसान प्रशिक्षण तथा शिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक लगभग 14 लाख किसानों को कृषि की नई प्रणाली में प्रशिक्षित किया जा चुका है।

कार्यक्रम के अनुसार किसानों – स्त्री तथा पुरुष दोनों को – कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक योगदान देने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।

कार्यक्रम के अनुसार किसानों के लिए विशेष अल्पावधि पाठ्यक्रमों, जिनमें उत्पादन तथा प्रदर्शन प्रशिक्षण कैम्प भी शामिल हैं, का प्रबन्ध किया जाता है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक देश में कुल 24,569 उत्पादन तथा प्रदर्शन कैम्पों का आयोजन किया जा चुका है।

अब इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 100 जिले हैं। आज से 6 वर्ष पूर्व यह कार्यक्रम केवल 5 जिलों में प्रारम्भ किया गया था।

आदमी जीता है तो क्योंकर ..?

जीने के लिए आदमी को रोटी ही काफ़ी नहीं, प्यार और सद्भाव भी ज़रूरी हैं।

जीवन से भावना और सौंदर्य का उतना ही गहरा सम्बन्ध है, जितना कि रोटी का।

जीवन एक कला है और नियोजन उसका आधार।

जब हम दूसरे पक्षों में नियोजन को स्वीकार करते हैं, तो क्यों न अपने परिवार को भी सीमित रखने के लिए इस का सहारा लें।

जीवन में प्यार, मुहब्बत, सहयोग, सद्भाव के लिए अपनाइए परिवार नियोजन।

davp 71/617

सामुदायिक विकास के अग्रदूत

सुरेशचन्द जैन

रघुबन्स सिंह

आमिनि अम्मा

[29 मार्च, 1972 को नई दिल्ली में कृषि भवन में आयोजित एक समारोह में कृषि राज्य मन्त्री श्री ए० पी० शिन्दे ने 1970-71 की ग्रामसेवक प्रतियोगिता में चुने गए देश के सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेवक और ग्रामसेविकाओं को पुरस्कार प्रदान किए। ग्रामसेवक प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेवक का प्रथम पुरस्कार बिहार के शाहाबाद जिले के दीनारा ब्लाक के श्री रघुबन्स सिंह को और द्वितीय पुरस्कार पंजाब के श्री दयाल सिंह को दिया गया। ग्रामसेविका का प्रथम पुरस्कार केरल राज्य में आलिकुलम ब्लाक की ग्रामसेविका श्रीमती आमिनी अम्मा को तथा द्वितीय पुरस्कार पंजाब की कुमारी गुरुदेव कौर को दिया गया। सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेवकों से भेंटवार्ता का विवरण यहां प्रस्तुत है।]

30 मार्च, 1972 को शास्त्री भवन के प्रैस रूम में श्री रघुबन्स सिंह ने मुझे बताया कि भोलेभाले ग्रामीणों और गरीब किसानों में काम करते हुए मैं हमेशा गौरव अनुभव करता हूं। गांव वालों के व्यवहार और उनके आपसी सम्बन्धों के बारे में श्री सिंह ने बताया कि पहले गांव के लोग हमें बड़ी शंका की निगाहों से देखते थे। कई लोग तो हमें अमेरिकी एजेन्ट समझते थे। ऐसे वातावरण में लोगों का विश्वास प्राप्त करने के लिए हमें बहुत मेहनत करनी पड़ी। हमने गांववालों के लिए पक्के कुएं खुदवाए, चिकित्सा प्रबन्ध उपलब्ध कराने में गांव वालों की मदद की तथा उन्हें अच्छा जीवन व्यतीत करने का तरीका सिखाया। धीरे धीरे गांव के लोगों के हृदय में हमारे प्रति सद्भावना जाग गई और अब वे हमें अपना हमदर्द और अपने सुख दुःख का साझीदार मान कर व्यवहार करते हैं।

अपने क्षेत्र में कृषि की प्रगति के बारे में उन्होंने बताया कि जबसे किसानों ने सघन कृषि कार्यक्रम अपनाया है तब से जमीन की उर्वरता बढ़ी है। आधुनिक कृषि औजारों तथा उन्नत किस्म के बीजों की खेती से उपज भी बढ़ी है। पहले लोग जहां एक साल में एक ही फसल

दयाल सिंह

उगा पाते थे अब वहां तीन-तीन फसलें एक साल में लेने लगे हैं। उनके ब्लाक में पहले गेहूं के अलावा और कोई अनाज नहीं होता था पर अब उनके ब्लाक में धान की पैदावार भी होने लगी है।

'गरीबी हटाओ' आन्दोलन के बारे में श्री सिंह का विचार था कि गांववालों के सामने सबसे बड़ी समस्या प्राकृतिक प्रकोप की है। हमारे क्षेत्र में सूखा और बाढ़ ऐसी दो समस्याएं हैं जिनसे जनता की गरीबी दूर होने में बाधा उपस्थित होती है। अगर इन संकटों पर काबू पाया जा सके तो गरीबी हटाने में बहुत समय नहीं लगेगा।

श्रीमती आमिनी अम्मा से बात करने पर पता चला कि वे बड़ी लगनशील महिला हैं। वे घर में भी उसी लगन से काम करती हैं जितनी लगन से बाहर। समाज सेवा करने में उनके पति का उन्हें पूरा सहयोग बराबर मिलता रहा है। उन्होंने अपने क्षेत्र की कृषि क्रान्ति की प्रगति के बारे में बताया

गुरुदेव कौर

रामकृष्ण पणिकर

एन० चिसा

कि उनके क्षेत्र में केवल एक गांव है जिसकी जनसंख्या 12,652 है। उनका कहना था कि उनकी प्रेरणा से 9,000 महिलाओं ने कृषि कार्य में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। 1,800 किचन गार्डन लगवाए और 225 खाद के गड्ढे तैयार करवाए हैं। खाना तैयार करने के पच्चीस प्रकार के नए तरीकों का प्रचलन कराया और इन तरीकों को 1,500 परिवारों ने अपनाया है। वहां के लोग अपने भोजन में हरी सब्जियों से अधिक मछली ज्यादा पसन्द करते हैं। आज के मंहगाई के जमाने में परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने और आमदनी बढ़ाने के लिए भी महिलाओं को कई काम सिखाए गए हैं। इनमें दर्जीगीरी, चटाई बनाना, किताबों की जिल्द बनाना, टोकरी बनाना आदि शामिल हैं। बहुत सी महिलाएं चरखा भी कातती है।

सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेवक का दूसरा पुरस्कार पानेवाले पंजाब में पाखोवाल ब्लाक के श्री दयाल सिंह से बात करने पर पता चला कि वे पहले फौज में नौकरी करते थे। जनता की सेवा करने के लिए उन्होंने ग्रामसेवक की नौकरी स्वीकार की। उनके क्षेत्र के तीन गांवों में 219 परिवार हैं। कृषि में हुई प्रगति के बारे में श्री दयालसिंह का कहना था कि उनके क्षेत्र में सभी किसान उन्नत किस्म के बीज और उर्वरकों का उपयोग करते हैं। सभी किसान आधुनिक कृषि यन्त्रों से खेती करते हैं। 1,656 हैक्टेयर भूमि में से 400 हैक्टेयर भूमि से साल में दो या तीन फसलें ली जाती हैं। पहले यहां धान बिल्कुल नहीं पैदा होता था लेकिन अब इसकी खेती यहां बढ़ रही है। उपज का औसत कम से कम 15 क्विण्टल प्रति एकड़ और अधिक से अधिक 20 क्विण्टल प्रति एकड़ है। हर गांव में चर्चा मण्डल हैं जहां पर किसानों को बीज की नई किस्मों के बारे में जानकारी दी जाती है। हाल के भारत-पाक युद्ध के दौरान गांववालों की भूमिका के बारे में उन्होंने बताया कि तीन गांवों को मिलाकर एक रक्षा समिति बनाई थी। गांव में रात भर हर आदमी बारी-बारी से पहरा देता था। युद्ध के दौरान उनके क्षेत्र में वारदात नहीं हुई।

सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेविका का दूसरा पुरस्कार भी पंजाब के घानौर ब्लाक में काम कर रही कुमारी गुरुदेव कौर को मिला। वे घानौर ब्लाक में पिछले दो साल से काम कर रही हैं। कुमारी गुरुदेव कौर ने बताया कि शुरू शुरू में तो औरतें मुझे अविश्वास की नजरों से देखती थीं। जब कभी अपमान भी सहना पड़ा। लेकिन ऐसी स्थिति ज्यादा दिनों तक नहीं रह । आखिर मुझे उनका विश्वास प्राप्त हुआ और मेरे अनुरोध पर महिला मण्डलों, युवती मण्डलों की स्थापना भी की गई। महिलाओं को स्वेटर बुनना, अचार मुरब्बा बनाना, सीना पिरोना आदि सिखाया गया। रेडियो जालन्धर से महिलाओं के लिए एक विशेष कार्यक्रम प्रसारित होता है, जिसे सुनने के लिए सभी महिलाएं प्रेरित की गई। परिवार नियोजन कार्यक्रम अपनाने में भी महिलाओं को उत्साहित किया गया तथा 255 स्त्रियां कृषि कार्य में प्रशिक्षित की गईं।

पाण्डिचेरी में माहे ब्लाक के ग्रामसेवक श्री के० रामकृष्ण पणिकर को को केन्द्र शासित क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेवक का प्रथम पुरस्कार मिला। श्री पणिकर से बात करने पर पता चला कि वे गांवों की समस्याएं हल करने में बहुत रुचि लेते हैं। ग्रामसेवक की नौकरी में आने से पहले वे भारत सेवक समाज में नौकरी करते थे। वे किसानों की हर तरह से मदद करते हैं। एक दिन में नौ मील चलना उनका रोज का काम है। अपने क्षेत्र की प्रगति का ब्यौरा देते हुए श्री पणिकर ने कहा कि उनके क्षेत्र में सभी 73 कृषक परिवार उन्नत किस्म के बीजों का उपयोग करते हैं। 173

शेष पृष्ठ 36 पर]

राष्ट्र का गौरव किसान भी जवान भी

डा० श्यामसिंह शशि

मानव जीवन की आधारभूत आवश्यकताएं तीन मानी जाती हैं — भोजन, वस्त्र और मकान। वस्तुतः इन्हें अर्थशास्त्रियों ने इतना बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है कि रक्षा सम्बन्धी आवश्यकता गौण पड़ जाती है। इन मूल आवश्यकताओं की पूर्ति तब तक सम्भव नहीं, जब तक हम उनके अनुकूल पर्यावरण एवं वातावरण की रक्षा में स्वावलम्बन नहीं प्राप्त कर लेते। आदिकाल से मनुष्य ने जहां बंजर धरती को हरी-भरी बनाने के लिए विभिन्न कृषि पद्धतियों की खोज की, वहां उसकी देखभाल के लिए भांति-भांति के अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण भी किया। ये अस्त्र-शस्त्र एक ओर वन्य पशु-पक्षियों से खेती की रक्षा के लिए उपयोग में लाए जाते थे तो उन्हीं से शत्रु पक्ष का मुकाबला भी किया जाता था।

हाल ही में भारत-पाक युद्ध में रक्षा सम्बन्धी आवश्यकता का महत्व पूरी तरह से स्पष्ट हो गया। एक ओर हमारा कृषक वर्ग खेत और खलिहानों में उपज का भण्डार बढ़ाने में लगा था तो दूसरी ओर हमारा जवान शस्य श्यामला धरती की रक्षा में अहर्निश जाग कर लड़ाई लड़ता रहा। हमने दोनों ही मोर्चों पर विजय प्राप्त की। एक अनूठी विजय। एक महान विजय।

आइए, इस सीमा रक्षक के बारे में कुछ जानने का प्रयत्न करें। आखिर क्या रहस्य था जो विजय का कारण बना। सचमुच किसान परिवारों से आए हमारे जवानों ने ही यह विजयश्री दिलाई और राष्ट्र का मस्तक गौरव से उन्नत कराया।

गौरव का प्रतीक

भारतीय जवान भारत की वीरतापूर्ण एवं अनुशासनबद्ध परम्परा का प्रतीक है तथा उसकी सेवाओं का उच्च और यशस्वी रिकार्ड रहा है। वह गौरव एवं दायित्व भावना से युक्त है। वह फ्लैण्डर के खेतों, उत्तरी अफ्रीका के रेतीले इलाकों, बर्मा के जंगलों तथा नेफा, कश्मीर और लद्दाख की घाटियों और कच्छ के रन तथा इच्छोगिल नहर में गौरवपूर्ण लड़ा। उसने अनेक विपदाओं और विषम परिस्थितियों का सहर्ष सामना किया है।

बलिष्ठ नाटा गोरखा, दुर्दमनीय जाट, पौरुषयुक्त पंजाबी, कठोर सिख, फुर्तीला मराठा, बहादुर राजपूत, निडर डोगरा और फौलादी गढ़वालियों ने अपनी अनुपम बहादुरी और अद्भुत साहस से भारत और अपनी जाति का गौरव सदा बढ़ाया।

जवान अपने सगे सम्बन्धियों को छोड़कर अनथक रूप से निर्भयतापूर्वक डटा रहता है तथा वह हमारी स्वतन्त्रता का प्रहरी है। प्रतिकूल मौसम में भी वह हमारी सीमाओं की पवित्रता की रक्षा के लिए सजग और सतर्क रहता है। उसका एकमात्र उद्देश्य आक्रान्ता को पराजित करके देश की रक्षा करना होता है। देशवासी जब रात्रि में निश्चिन्त होकर शयन कर रहे होते हैं तो जवान अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए पहरा देता है।

जोखम भरा जीवन

जवान का जीवन पर्याप्त कठोर होता है। सवेरा होने पर उन्हें किन्हीं कोमल हाथों से प्रातःकालीन चाय सुलभ नहीं होती। उसे स्वयं हजारों फुट नीचे से पानी लाकर चाय बनानी होती है। भूमिगत बंकर उसका घर होते हैं। यह घर वह स्वयं तैयार करता है और स्वयंमेव उनकी देखभाल करता है। यदि तम्बू सुलभ हों तो वह इसमें बहुत कम स्थान ग्रहण करता है उसका जीवन जोखिम और खतरों से भरा हुआ है। वह जानता है कि स्वतन्त्रता के लिए सतत सतर्कता का मूल्य चुकाना आवश्यक होता है और इसमें जरा सी ढिलाई भी घातक प्रमाणित हो सकती है।

रेजिमेंट के ध्वजों का जवान के लिए प्रतीकात्मक महत्व होता है। वस्तुतः किसी सैन्य टुकड़ी या रेजीमेंट का पुराना गौरव ही उसे प्राप्त होने वाले रण सम्मानों में प्रकट होता है। इस प्रकार जवान अपने पूर्ववर्तियों द्वारा स्थापित वीरतापूर्ण परम्परा को विरासत में प्राप्त करता है। ये ध्वज अपने भावनात्मक मूल्य के कारण पवित्र माने जाते हैं और जवान इन ध्वजों के गौरव की रक्षा के लिए हंसते-हंसते अपना प्राण समर्पित कर देता है। युद्धकाल हो अथवा शान्तिकाल, जवान अपने रेजीमेंट के ध्वज की आन कायम रखना चाहता है और इस प्रकार रेजिमेंट के इतिहास में नया अध्याय जोड़ने का प्रयत्न करता है। यद्यपि आधुनिक युद्ध प्रणाली के कारण ये ध्वज रणक्षेत्र में नहीं ले जाए जाते, फिर भी इनका रस्मी महत्व बना हुआ है और जवान प्रथाओं का उत्साहपूर्वक निर्वाह करता है।

जवान की गतिविधियों का क्षेत्र केवल स्वदेश तक ही सीमित नहीं वह शान्ति का सन्देश लेकर विदेशों में भी जा चुका है, विशेषकर कांगों, वियतनाम, कम्बोडिया और लाओस, कोरिया तथा लेबनान में। जवान ने सर्वत्र अपनी शानदार छाप छोड़ी है। इसके अनुशासन, ईमानदारी और मानवीयता की अन्य सेनाओं ने भी सराहना की है।

शान्ति का सन्देशवाहक

अपनी सामान्य शिक्षा दीक्षा के बावजूद उसने असाधारण सूझबूझ तथा धैर्य एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के मानवीय गुणों का परिचय दिया है। आधुनिक युद्ध ने तो जवान का जीवन ही बदल दिया है। उसे अपने घर से हजारों मील दूर जाकर लड़ना पड़ता है। अतः उसे अपने देश के इतिहास, संस्कृति, भूगोल और भाषा की जानकारी प्राप्त करनी होती है जिसका उसे विस्तृत ज्ञान दिया जाता है।

हौसला किसी ध्येय में व्यक्ति की गहरी निष्ठा से उत्पन्न होता है। यह स्वयमेव, देश अथवा मित्रों के गौरव का सूचक है। इसके अनेक पहलू हैं। जवान को सुदीर्घ प्रशिक्षण और सैद्धान्तिक शिक्षा द्वारा शत्रु से लोहा लेना की कला सीखनी होती है। उसे यह सीखना होता है कि खतरे से सामना और ठोस प्रहार किस रूप में किया जाए। अनुशासन से सेना को शक्ति स्निग्धता प्राप्त होती है, परन्तु इसे विश्वास के बिना कायम नहीं रखा जा सकता।

महात्मा गांधी ने कहा है : सच्चा सैनिक आगे बढ़ते समय यह बहस नहीं करता कि सफलता कैसे प्राप्त होगी। परन्तु उसे यह विश्वास होता है कि यदि वह अपनी विनम्र भूमिका सही अदा करेगा तो रण किसी-न-किसी प्रकार जीत ही लिया जाएगा। इसमें हमें निम्न अंग्रेजी कविता का का स्मरण हो आता है :

जब लाईट बिग्रेड मृत्यु की घाटी
की ओर प्रयाण कर रही होती है
तो उसके समक्ष क्यों का प्रश्न नहीं होता
वह केवल करना या मरना जानती है।

जवान असन्दिग्ध रूप से इस परम्परा का अनुसरण करता है और अपने खून के अन्तिम कतरे तक संघर्ष करता है। अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों की कहानी से हमें विदित होता है कि हमारा जवान विश्व का सर्वोत्तम योद्धा है।

विवेकशील नागरिक

जवान कोई असामान्य आकृति न होकर एक आम आदमी होता है। उसे अपनी घरेलू समस्याएं हल करनी होती हैं, बच्चों को शिक्षित करना होता है और अपने सम्बन्धियों आदि की सहायता भी करनी होती है। वह नास्तिक नहीं होता, वरन् अपनी पसन्द के धर्म में विश्वास रखता है। वह सैनिक के साथ-साथ नागरिक भी होता है। यद्यपि वह राजनीति में कभी भाग नहीं लेता, परन्तु वह अपने अधिकार और कर्त्तव्य भलि-भांति जानता है। उसे सैनिक होने के कारण समाज से पृथक नही किया जा सकता।

जवान अच्छा गृहपति होने के साथ-साथ एक आदर्श खिलाड़ी, छात्र, शिक्षित, तकनीशियन और नेता भी होता है। राष्ट्र जवान का ऋण कभी नहीं चुका सकता। यह एक ऐसा ऋण है जो बढ़ता ही जा रहा है। हमारा जवान सदा अपराजेय रहे।

नव युगोदय

उठो अब नया युग उदय हो गया है ;
धरा छ रही है गगन के सितारे।
अनेकों नए कण्ठ जय-जय पुकारें
नए चित्र भुजबल के हमने उतारे।

नई चेतना फिर सजता हो उठी है;
नया रूप ले खिल रही है धरा रे।
प्रकृति पर विजय अब मनुज की नई है
नए चित्र चन्दा के नभ मे उतारे।

हुआ है उजाला नई बस्तियों में
बदल अब गए हैं पुराने नजारे।
नई गन्ध लेकर कमल खिल रहे हैं
कला ले रही है नई चेतना रे।

नए स्वर लिए बह रही ज्ञान गंगा
नए वेद की चल रही है रिचा रे
मनुज के स्वरों में गगन बोलता है
न अब मूक कण-कण न अब मूक तारे

कमल साहित्यालंकार

राजस्थान नहर

मरुधरा में हरे-भरे जीवन की आशा

मुकुल चन्द पाण्डेय

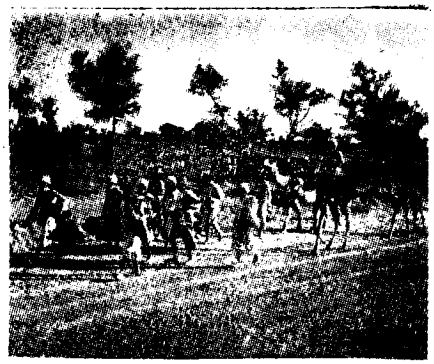

राजस्थान को भारतीय रेगिस्तानों का प्रदेश माना जाता था। मई के महीने में नदियां सूख जाती थीं, धरती धूल भरी गर्म हवा से तवे के समान तपती थी। सूखे और उजाड़ खेतों से फड़-फड़ाते मोर भाग जाते थे, सड़क के किनारे ऊंट झाड़ियों पर दो चार बची-खुची पत्तियां टूंगते रहते थे। समूचा भू-दृष्य खाली युद्ध स्थल सा प्रतीत हुआ करता था। कुएं जल से रिक्त हो जाते थे। उदयपुर के इर्दगिर्द का इलाका बिल्कुल सूखा रहता था। मई में इस क्षेत्र के लोग चरागाहों, जलीय क्षेत्रों तथा शान्त क्षेत्रों की तलाश में पंक्तिबद्ध विस्थापितों की तरह आते जाते नजर आते थे।

थार में किसी को भी बाढ़ का कोई भय नहीं, आज जहां रेत है वहां किसी युग में समुद्र की लहरें गीत गाया करती थीं। चन्द्रतल की तरह वीरान इस रेगिस्तान में उन लहरों की याद छोटे-छोटे घोंघे और सीपियों के रूप में ताजा है जो रेत के बीच में फंस कर रह गई। सदियों से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिसमें सूखा और अकाल जीवन की सामान्य घटनाएं बन गए हैं। सूर्य और रेत की मोहिनी माया से रेगिस्तान की मुक्ति तभी सम्भव है जब नहरें (राजबहे) आएं। पश्चिमी थार का रेगिस्तान दो करोड़ एकड़ में फैला है और इतने बड़े रेगिस्तान के लिए पानी का प्रबन्ध करना बड़ा कठिन और खर्चीला काम है।

राज्य सरकार ने 1958 में राजस्थान नहर का निर्माण आरम्भ करके इस दिशा में पहला कदम उठाया। व्यास और सतलुज के संगम के ठीक नीचे हरि के बराज से नहर में पानी डाला गया लेकिन जब तक व्यास नदी में आने वाले बरसाती बाढ़ के पानी को इकट्ठा करने का प्रबन्ध नहीं किया जाता, तब तक गर्मियों में नहर के लिए पानी मिलना कठिन होगा या बहुत कम पानी आएगा। पानी के बहुमुखी उपयोग और पनबिजली विकास के लिए चालू व्यास परियोजना का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि राजस्थान नहर को साल भर पर्याप्त पानी मिलता रहे। विश्व बैंक और संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने व्यास नहर के विकास के लिए धन देने का वायदा 1960 में किया था। सन् 1963 में अमेरिकी विशेषज्ञों के एक दल ने इस क्षेत्र का दौरा किया। इस दल की सिफारिशों के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी अमेरिकी एजेन्सी और विश्व बैंक ने मिलकर 1966 में ऋण दिए। व्यास परियोजना के लिए अब तक कुल 4 करोड़ 70 लाख डालर के ऋण दिए जा चुके हैं।

व्यास परियोजना की एक उल्लेखनीय बात यह है कि पोंग के पास एक बांध और एक बिजलीघर बनाया जा रहा है। इनका निर्माण कार्य 1961 में शुरू हुआ। आशा है 1973 में बांध में पानी जमा होने लगेगा। नदी को मोड़ कर बांध की ओर लाने के लिए 30 फुट व्यास वाली पांच सुरंगें बनाई गई हैं जिनकी कुल लम्बाई 5,029 मीटर है। बांध निर्माण कार्य की एक उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण घटना यह है कि व्यास नदी का समूचा बहाव सुरंगों की ओर मोड़ दिया गया और अक्तूबर, 1969 से बांध की नींव के नदी वाले भाग की खुदाई शुरू हो गई। तीन सुरंगे बिजली घर के लिए पानी जमा करने के काम आएंगी और दो सिंचाई के लिए होंगी।

पोंग में जो कृत्रिम झील बनेगी उसमें 55 लाख एकड़ फुट पानी जमा किया जा सकेगा लेकिन इसकी जलग्रहण क्षमता इतनी होगी कि राजस्थान नहर में करीब 80 लाख एकड़ फुट पानी छोड़ा जाएगा। यह हरि के हेड में तरल सोने की तरह प्रवाहित किया जाएगा। इस जल के आने से राजस्थान नहर की क्षमता बढ़ जाएगी और वह अपने उद्देश्य को पूरा कर सकेगी। इस नहर से थार रेगिस्तान में प्रतिवर्ष 24 लाख एकड़ भूमि की सिंचाई करने का लक्ष्य है। पूरी हो जाने पर नहर 426 मील लम्बी होगी। इस समय नहर का निर्माण कार्य बहुत धीरे चल रहा है। कंकरीट से बनाई जाने वाली नहर एक मास में मुश्किल से एक मील आगे बढ़ पाती है और अब तक कुल 185 मील लम्बी नहर ही बन पाई है। नहर जब बनकर तैयार हो जाएगी तब इस क्षेत्र में रहने वाले 71 हजार लोगों को अकथनीय लाभ होगा। भारत में आबादी का कुल घनत्व 347 व्यक्ति प्रति वर्गमील है लेकिन राजस्थान में इसका क्षेत्रफल देश के कुल क्षेत्रफल का 11 प्रतिशत है, आबादी का घनत्व प्रत्येक वर्गमील 53 व्यक्ति है लेकिन अजेय थार के रेगिस्तान में आबादी का घनत्व बीकानेर के पास आकर 39 व्यक्ति प्रति वर्गमील और जैसलमेर के पास आकर छः व्यक्ति प्रति वर्गमील रह जाता है।

थार रेगिस्तान के जलते प्रदेश में शान्ति का सन्देश सुनाने वाले की तरह घूमती हुई नहर गिद्धों के साम्राज्य में मानव हाथों और मानवता की दृष्टि का विस्तार करती है। योजना की रूप-रेखा तैयार करने वालों का अनुमान है कि 1988 तक इस क्षेत्र में 20 लाख लोग बस जाएंगे जिनके लिए पानी का

पूरा प्रबन्ध किया जा रहा है। आलोचकों का कहना है कि रूपरेखा तो बड़ी सुहावनी है लेकिन थार भी अजेय है। आप रेगिस्तान में पानी तो पहुंचा सकते हैं लेकिन रेगिस्तान को पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। इस आलोचना का उत्तर थार के उत्तर दिशा में जैसलमेर के उत्तर और बीकानेर के भी उत्तर राजस्थान के गंगानगर जिले में देखा जा सकता है जो कभी वीरानगी का प्रतिरूप था। चालीस साल पहले एक महाराजा ने रेगिस्तान में पानी पहुंचाया और रेगिस्तान ने बड़ी कृतज्ञता से उसका पान किया।

राजस्थान नदियों नालों का प्रदेश नहीं, अतः नहर के लिए पानी का प्रबन्ध राज्य की सीमाओं से बाहर करना होगा। जिस किसी राजा के राज्य की नदी का पानी लेने का इरादा महाराजा गंगासिंह ने किया, उसने एतराज किया। बीकानेर जैसे गरीब राज्य के लिए इस परियोजना का खर्च उठाना सामर्थ्य से बाहर की बात थी लेकिन महाराजा गंगासिंह तो किसी भी मूल्य पर नहर के निर्माण के लिए कटिबद्ध था। उसने राज्य की वित्तीय स्थिति को सुधारा, आपत्तियों को दूर किया और ऋण जारी किया। अन्ततोगत्वा 1927 में गंगा नहर चालू हुई। फिरोजपुर से आरम्भ होकर सतलुज के पानी को 85 मील दक्षिण में उत्तरी थार के वीरान और बदलते रेत के टीलों तक शिवपुरी लाया गया। बहुत से गांव वालों को यकीन न हुआ और वे ऊंट पर चढ़कर जल का आगमन देखने पहुंचे।

इस नहर के चालू होने के चालीस साल से भी अधिक समय बीत जाने के बाद अक्तूबर मास में राजस्थान के रेगिस्तान में पहले जैसी ही नीरवता और निर्ममता का साम्राज्य था। सफेद जलते आकाश में गिद्ध चक्कर लगाते हुए कुछ खाद्य पदार्थ की आशा में रेत का सर्वेक्षण कर रहे थे। कच्चे कुओं में थोड़ा पानी शेष था। चटकीले वस्त्रों में लिपटी ग्राम सुन्दरियां अपनी भारी गगरियां कमर पर रखे और उन्हें भुजाओं में कसे ऐसे चल रही थीं, मानो वे अपने बच्चों को गोद में सम्भाले हुए हों। ऊंटों पर सवार साफाधारी जवान हाथ में बन्दूक लिए बढ़े चले आ रहे थे। उत्तरी थार में पानी पर अक्सर झगड़ा हो जाता है और झगड़ों का फैसला प्रायः हथियारों से होता है। उस आकाश में वही सूर्य जलता रहता है।

फिरोजपुर से पानी लेकर आनेवाली नहर की मंजिल शिवपुरी हेड के पास समाप्त हुई। गंदला भूरा पानी खम्भों के चारों ओर नाचने लगा। शिवपुरी हेड से दो राजबहे तीर की तरह निकले और धीरे-धीरे खेतों और पेड़ों में ओझल हो गए। किनारे खड़े नीले फूल झुक-झुक कर एक दूसरे का अभिवादन कर रहे थे। चटकीले रंगों वाली तितलियां पानी के उपर पंख फड़फड़ा रही थीं। एक जीप पर किसान सवार थे। उछलती-गिरती जीप धीरे-धीरे नहर की ओर आ रही थी। इन किसानों के पूर्वज इस नहर को ऊंट की पीठ पर सवार होकर देखने आए थे। वे नहर के किनारे उतरे, झुके, पानी को चुल्लू में लिया, उसे सूंघा और चखा यानी चालीस साल बीत जाने के बाद भी उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि पानी और यहां।

गंगानगर शिवपुरी से कुछ दूर है। जहां आज गंगानगर है, वहां चालीस साल पहले कुछ झोपड़ियां थी जिनमें गड़रिये और यायावर किसान रहते थे लेकिन आज यहां फूलता-फलता नगर आबाद है। कई कालेज, स्कूल, सिनेमा घर और बाजार हैं। सड़क के चारों ओर ट्रैक्टर खड़े नजर आते है और हर खिड़की से ट्रांजिस्टर की आवाज सुनाई पड़ती है। मजदूर भी घड़ी बांध कर साइकिल पर चलते हैं। बच्चे स्कूल जाते हैं, क्योंकि लोगों के पास इतना पैसा है कि उन्हें पढ़ा सकें। सभी खुशहाल हैं। लोग धन कमाने यहां आते हैं। नहर आने से पहले गंगानगर जिले की आबादी कुछ सौ थी लेकिन आज जिले की आबादी दस लाख से भी ज्यादा है। कालेज, स्कूल, सिनेमा, दूकानें, ट्रैक्टर, नई खुशहाली ये सब नहर आने के साथ आए। ये सब पानी के साथ बह कर जाए। गंगा नहर से जिले की 7 लाख 4 हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होती है। चालीस नलकूप भी चालू हैं। भारत में सबसे सम्पन्न फार्मों में से कुछ यहां हैं और हालत यह है कि नहर के किनारे एक एकड़ भूमि की कीमत छः हजार रुपए है। लेकिन नलकूपों के बीच भी राजस्थान की परम्परा जीवित है।

महाराजा फार्म बीकानेर पर सर्वत्र कलकल पानी गीत गाता घूमता है। वह नहर और नलकूप से उछल कर मेड़ों को तोड़ता हुआ फसल के हरे-भरे खेतों के पौधों के पीछे छिपता भागता है। वह बागों और खेतों, दोनों को सींचता है, अमरूद, अंगूर, संतरे, मौसमी नाशपाती, आड़ू सभी फार्म में फूलते-फलते हैं और विभिन्न राष्ट्रीय कृषि प्रदर्शनियों में प्राप्त चांदी के कपों से भरी आलमारी उनकी किस्म की गवाह है। अनाज, कपास और शाक सब्जी भी बहुतायत से होती है। पास ही स्थित लायलपुर फार्म में भी पानी खूब है। यहां होने वाले अखरोट और आड़ू को भी राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है। यहां आकर इस पर यकीन ही नहीं होता कि कुछ मील दूर पीले बिच्छू रेत के टीलों के बीच डंक मारते हैं।

इस क्षेत्र में प्रायः सभी फार्म समृद्ध हैं। जिले के कृषि अधिकारी श्री शारदा के मतानुसार नहर के आने से पहले यहां कोई जमीन को पूछता ही नहीं था। यही कारण है कि अधिकांश किसानों के पास बीस-बीस, तीस-तीस एकड़ तक जमीन है, जितनी आमतौर पर भारत में और कहीं किसानों के पास नहीं। किसान अपने खाने की चीजें स्वयं उगाता है। उसका व्यक्तिगत खर्च बहुत

[शेष पृष्ठ 26 पर

कृषि उत्पादन के बढ़ते चरण

पिछले साल खाद्यान्नों और वाणिज्यिक फसलों की पैदावार में सर्वतोमुखी प्रगति हुई। संसद में पेश की गई केन्द्रीय कृषि मंत्रालय की 1971-72 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार पिछले वर्ष के 232 लाख मीट्रिक टन के स्तर तथा चौथी योजना के 240 लाख मीट्रिक टन के लक्ष्य की तुलना में, चालू वर्ष के दौरान गेहूं का उत्पादन लगभग 260 मीट्रिक टन होने की सम्भावना है। जहां तक वाणिज्यिक फसलों का सम्बन्ध है, गत वर्ष की तुलना में कपास का उत्पादन लगभग 10 लाख गांठें और जूट का उत्पादन लगभग 8 लाख गांठें अधिक होने की सम्भावना है। तोरिया और सरसों का उत्पादन एक नए स्तर तक पहुंचने और मूंगफली के उत्पादन में कमी होने की सम्भावना है। गन्ने का उत्पादन भी पिछले वर्ष की तुलना में कुछ कम होने की सम्भावना है।

उत्पादनशील किस्में

1971-72 में 180 लाख हैक्टर क्षेत्र में अनाजों की अधिक उत्पादनशील किस्मों की खेती करने का लक्ष्य पूर्णतः पूरा हो जाने की आशा है। गेहूं के उत्पादन में अधिक उत्पादनशील किस्मों के प्रयोग से एक क्रान्ति आई है। चावल के सम्बन्ध में भी प्रगति होने की आशा है। विशेषकर, ग्रीष्म ऋतु में चावल की अधिक उत्पादनशील किस्मों से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं और यह एक बड़ी अच्छी बात है। संकर बाजरे के विषय में भी हम प्रगति की ओर अग्रसर हैं, परन्तु 1971 के खरीफ के मौसम में हरियाणा और राजस्थान में एक या दो रोगों का प्रकोप देखने में आया। संकर ज्वार और बाजरे के मामले में कुछ कठिनाइयां मौजूद हैं और अच्छी किस्मों को विकसित करने की दिशा में अनुसन्धान प्रयासों को गतिमान किया जा रहा है।

दलहनों का उत्पादन

दलहन विषयक अखिल भारतीय समन्वित अनुसन्धान परियोजना के माध्यम से अनुसन्धान कार्य में तेजी लाई गई है। वैज्ञानिकों ने अरहर, उड़द, मूंग तथा मसूर की अधिक उपज देने वाली तथा कम समय में तैयार हो जाने वाली कुछ किस्मों का विकास किया है और जारी करने से पूर्व उनका परीक्षण किया जा रहा है। इनमें से तीन किस्में जारी भी की जा चुकी हैं। इन तीन नई किस्मों के बीज संवर्धन और प्रदर्शन पर केन्द्रीय प्रायोजित योजना तैयार की गई है, जिसे 1972-73 में कार्यरूप दिया जाएगा।

वाणिज्यिक फसलें

आयात उत्पादन कार्यक्रम के अन्तर्गत जिसे दिसम्बर, 1971 से प्रारम्भ किया गया है, तोरिया सरसों की फसलों के 1.50 हजार हैक्टर क्षेत्र को शामिल करने के लिए अभियान के रूप में वनस्पति रक्षण उपाय किए गए। इस वर्ष गत वर्ष की तुलना में इसके उत्पादन में काफी वृद्धि होने की सम्भावना है। मूंगफली के विषय में, राज्य योजनाओं के अधीन पैकेज कार्यक्रम क्रियान्वित किए गए हैं।

सोयाबीन तथा सूरजमुखी के बीज जैसे गैर-परम्परागत तिलहनों की खेती शुरू करने के बारे में महत्वपूर्ण रूप से शुरूआत की गई है। उत्पादकों को प्रोत्साहन देने के लिए भारतीय खाद्य निगम को निर्धारित 85 रुपये प्रति क्विण्टल के क्रय मूल्य के अतिरिक्त 15 रुपये प्रति क्विण्टल तक का प्रीमियम देने का अधिकार दिया गया है। सूरजमुखी के बीज के विषय में प्रदर्शन कार्यक्रम शुरू किए गए हैं, जिनका उद्देश्य इस फसल तथा इसकी खेती की तकनीकों के विषय में कृषकों को अवगत कराना है।

विचाराधीन वर्ष की अवधि में, कपास के विकास के लिए अनेक नए कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। 13 जिलों में जिनमें 6 सर्वाधिक सिंचित जिले तथा 7 वर्षा-सिंचित कपास उगाने वाले जिले शामिल हैं, एक सघन कपास जिला कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। संकर-4 नामक नई किस्म में 1.5 से 2.0 गांठ तक प्रति हैक्टर अधिक उपज देने की क्षमता है। एम० सी० यू०-5 नामक एक अन्य किस्म दक्षिण के कपास उत्पादक क्षेत्रों के लिए अच्छी सिद्ध हुई है। इन दोनों किस्मों के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में काफी वृद्धि की जा रही है।

पश्चिम बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश के 6 चुने हुए जिलों में जूट का उत्पादन बढ़ाने के लिए भी सरकार द्वारा एक सघन जूट जिला कार्यक्रम स्वीकृत किया गया है।

बारानी खेती

1971-72 के दौरान बारानी खेती के समाकलित विकास के लिए 15 नई मार्गदर्शी परियोजनाएं मंजूर की गई थीं। इससे चौथी योजना की व्यवस्था के अनुसार ऐसी मार्गदर्शी परियोजनाओं की संख्या बढ़कर 14 तक पहुंच गई है। सन् 1971-72 की 24 परियोजनाओं के लिए 4.44 करोड़ रुपये का परिव्यय मंजूर किया गया था।

लघु सिंचाई

1971-72 की अवधि में लघु सिंचाई के विकास पर सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय की लगभग 105.24 करोड़ रुपये की रकम व्यय किए जाने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त, भूमि विकास बैंकों, केन्द्रीय सहकारी बैंकों, कृषि पुनर्वित्त निगम तथा कृषि निगम उद्योग जैसे अभिकरणों से प्राप्त होने वाली लगभग 130 करोड़ रुपये की संस्थागत पूंजी लघु सिंचाई कार्यों पर व्यय किए जाने की सम्भावना है। सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय मुख्यतः छोटे कृषकों तथा कमजोर वर्ग के व्यक्तियों को लाभ पहुंचाने वाले सार्वजनिक तथा सामुदायिक कार्यों पर तथा संस्थागत

इकाइयों की डिबेंचर सहायता प्रदान करने पर प्रयोग किया जा रहा है। विभिन्न राज्यों की ऋण परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक की सहायता से लघु सिंचाई में जो ऋण दिए जाने के लिए एक मुख्य मद है, उससे बड़ा योगदान मिलेगा। 1971-72 की अवधि में दो परियोजनाएं (हरियाणा और तमिलनाडु के लिए एक-एक) स्वीकार की गई है, जिनके अन्तर्गत लघु सिंचाई के लिए क्रमश: 27 करोड़ तथा 17 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। ये उन 2 परियोजनाओं के अतिरिक्त हैं जो गुजरात तथा आन्ध्र प्रदेश के लिए पहले स्वीकृत की जा चुकी थीं, और जिनके लिए लघु सिंचाई हेतु क्रमश: 20 करोड़ रुपये और 10.50 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी।

भूमि संरक्षण

13.7 लाख हैक्टर क्षेत्र को लाभ पहुंचाने के लिए विचाराधीन वर्ग के दौरान भूमि संरक्षण के लिए 31.80 करोड़ रुपये परिव्यय की व्यवस्था की गई थी। वन-रोपण और चरागाह विकास के अन्तर्गत आई 6 लाख हैक्टर खाली भूमि को भी शामिल करने का प्रस्ताव था। प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं के जलग्रहण क्षेत्रों में भूमि संरक्षण की केन्द्रीय प्रायोजित योजना के अन्तर्गत 4.8 करोड़ रुपये की लागत से 1.08 लाख हैक्टर भूमि को लाभ पहुंचाने का प्रस्ताव था।

उर्वरक उपयोग

1970-71 की अवधि में पोषक पदार्थों के रूप में उर्वरकों की खपत 21.77 लाख मीट्रिक टन थी, जो 1971-72 में बढ़कर लगभग 26.01 लाख मीट्रिक टन तक जा पहुंची। इस प्रकार उर्वरकों की खपत में लगभग 20 प्रतिशत वृद्धि हुई। 17.59 लाख मीट्रिक टन नाईट्रोजन, 5.47 मीट्रिक टन पी2 ओ5, तथा 2.95 लाख मीट्रिक टन के 2ओ की खपत में क्रमश: 18 प्रतिशत, 18 प्रतिशत तथा 29 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

बीज

केन्द्रीय सरकार ने बिहार, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल के लिए गेहूं, चने तथा जौ के उत्तम कोटि के बीजों की सप्लाई करने हेतु समन्वित रूप से प्रबन्ध किए। राष्ट्रीय बीज निगम ने, जो एक सार्वजनिक क्षेत्र का संगठन है, संवर्धनात्मक तथा सप्लाई सम्बन्धी अपने कार्य-कलाप जारी रखे। आलोच्य वर्ष के दौरान, इसकी बिक्री 4.61 करोड़ रुपये तक पहुंच गई।

वनस्पति रक्षण

1971-72 की अवधि में वनस्पति रक्षण उपायों से 580 लाख हैक्टर क्षेत्र को लाभ पहुंचने की सम्भावना है। इस वर्ष की अवधि में 10 लाख हैक्टर क्षेत्र में हवाई छिड़काव किया गया, जबकि गत वर्ष 6.76 लाख हैक्टर क्षेत्र में यह कार्य किया गया था।

मशीनरी

1969-70 की आवश्यकताओं को देखते हुए 35,000 ट्रैक्टरों के आयात करने का निर्णय किया गया। इसमें से अक्टूबर, 1971 के अन्त तक 25,390 ट्रैक्टरों का आयात या लदान हुआ है। इन ट्रैक्टरों का प्राय: राज्य कृषि उद्योग निगमों के माध्यम से नियतन किया गया है। विभिन्न प्रकार की कृषि परिस्थितियों के अन्तर्गत नई किस्म के उपकरणों के विकास तथा ऐसे उपकरणों के उत्पादन की समस्याओं की ओर सक्रिय रूप से ध्यान दिया जा रहा है। कृषि उद्योग निगम, ट्रैक्टरों तथा कृषि मशीनों का वितरण करने के अतिरिक्त, कृषि मशीनरी भाड़ा केन्द्रों की स्थापना करने के विषय में भी कदम उठा रहा है। 113 केन्द्रों की स्थापना हो चुकी है।

विशेष कार्यक्रम

चौथी योजना में निहित वृद्धि तथा सामाजिक न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लघु कृषकों, सीमान्त कृषकों तथा कृषि श्रमिकों और प्राय: सूखे से प्रभावित रहने वाले क्षेत्रों के लिए विशेष कार्यक्रम तथा ग्रामीण रोजगार के लिए क्रैश कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। लघु कृषक विकास अभिकरण की समस्त 26 परियोजनाएं मंजूर की जा चुकी हैं। लगभग 12 लाख छोटे कृषकों को चुन लिया गया है और उन्हें लघु सिंचाई के विकास, दुधारू पशुओं के क्रय तथा कुक्कुट पालन आदि के लिए ऋण के रूप में सहायता दी जा रही है। सीमान्त कृषकों तथा कृषि श्रमिकों की समस्त 41 परियोजनाओं को भी पंजीकृत किया जा चुका है और लघु सिंचाई के विकास, दुधारू पशुओं के क्रय तथा कुक्कुट पालन आदि के लिए सहायता हेतु 5.4 लाख भागीदारों का चुनाव किया जा चुका है।

समस्त 54 जिलों के लिए सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (जिसे पहले ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम कहा जाता था) मंजूर किया गया है और दिसम्बर, 1971 के अन्त तक उसके लिए 23.55 करोड़ रुपए का परिव्यय स्वीकार किया गया था। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत लघु सिंचाई, भूमि संरक्षण, वनरोपण तथा सड़कों के निर्माण की योजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं। 1971-72 की अवधि में इस कार्यक्रम से रोजगार के लिए लगभग 237 लाख मानव दिवस प्राप्त होने की आशा है।

कृषि अनुसन्धान

चावल, गेहूं, अन्य धान्यों, दलहनों, कपास, तिलहनों तथा जूट विषयक समन्वित अनुसन्धान परियोजनाओं के अन्तर्गत फसलों की कई नई किस्मों को विकसित किया गया है। भू-विज्ञान, सस्यविज्ञान, कृषि इंजीनियरी, जल प्रबन्ध तथा बारानी खेती के क्षेत्रों में अनुसन्धान कार्य को गतिवान किया गया है। पशु विज्ञान के क्षेत्रों में पशु उत्पादन टेक्नालाजी तथा पशु रोग के विषय में अनुसन्धान करने के लिए नई परियोजनाएं शुरू की गई थीं।

कृषि विपणन

1971 में अप्रैल से दिसम्बर तक की अवधि में, 58 करोड़ रुपए के मूल्य की जिन्सों का निर्यात से पहले श्रेणीकरण किया गया था। अप्रैल, 1971 से फरवरी, 1972 तक की अवधि में 242 मण्डियों में मण्डी-सर्वेक्षण किया गया।

इस सर्वेक्षण का उद्देश्य बढ़ती हुई कृषि उपज के लिए अतिरिक्त सुविधाओं का निर्धारण करना था। अप्रैल से सितम्बर, 1971 तक की अवधि में 211 मण्डियों तथा उप मण्डियों को कानून की परिधि के अन्तर्गत लाया गया। इस प्रकार नियमित मण्डियों की संख्या बढ़कर 2,356 तक जा पहुंची है।

निर्यात वृद्धि

अप्रैल-जून, 1971 की अवधि में 103 करोड़ रुपए के मूल्य की कृषि जिन्सों का निर्यात किया गया। यह निर्यात गत वर्ष की इसी अवधि में होने वाले निर्यात से लगभग 16 प्रतिशत अधिक था।

पशु पालन

पहले से चालू 46 परियोजनाओं के अतिरिक्त इस वर्ष की अवधि में 6 नई सघन पशु विकास परियोजनाएं मंजूर की गई। 18 नए आदर्श ग्राम खण्डों की स्थापना की गई। दो नए केन्द्रीय पशु प्रजनन फार्मों की भी स्थापना की गई है, जिनमें से एक अलामाडी (तमिलनाडु) में मुर्रा भैंसों के लिए है और दूसरा कोरापट (उड़ीसा) में जर्सी गायों के लिए है। संकर पशु प्रजनन कार्यक्रम को गतिमान करने के लिए विभिन्न राज्यों में वितरित करने हेतु, आस्ट्रेलिया तथा डेनमार्क से जर्सी, परीस्यिन वाउन स्विस तथा रैड-डैन आदि नस्लों की 494 विदेशी गायें आयात की गई। डेनमार्क, स्विट्जरलैण्ड और पश्चिम जर्मनी के सहयोग से पशु प्रजनन परियोजनाओं को क्रियान्वित किया जा रहा है। भेड़ विकास के लिए उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा बिहार में 3 अतिरिक्त फार्मों की स्थापना के लिए, स्थानों का चुनाव कर लिया गया है। भेड़ सुधार कार्यक्रम को सुदृढ़ करने के लिए इस वर्ष के दौरान अमरीका से 2,570 रैम्बोलेट भेड़ें तथा रूस से 3,019 मैरिनो भेड़ें आयात की गई हैं।

डेयरी उद्योग

समस्त डेयरी संयन्त्रों की दूध सम्भालने की औसत दैनिक क्षमता जो गतवर्ष 22.50 लाख लिटर प्रतिदिन थी, बढ़कर 24.0 लाख लिटर तक पहुंच गई। इस वर्ष की अवधि में 17 नए डेरी संयन्त्रों की स्थापना की गई। इससे अब डेयरी संयन्त्रों की कुल संख्या 123 हो गई है।

मछली उद्योग

आलोच्य वर्ष की अवधि में 18.79 लाख मीट्रिक टन मछलियां पकड़ी गई, जबकि पिछले वर्ष की अवधि में केवल 17.74 लाख मीट्रिक टन मछलियां पकड़ी गई थीं। यह वृद्धि समुद्री तथा अन्तर्देशीय दोनों प्रकार की मछलियों के सम्बन्ध में हुई है। 1971-72 की अवधि में समुद्रीय मछलियों के निर्यात से 40 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। समीक्षाधीन वर्ष के दौरान 1019 यन्त्रीकरण नौकाओं की वृद्धि की गई, जिससे अब ऐसी नौकाओं की संख्या बढ़कर 10,762 तक जा पहुंची है। कृषि वित्त निगम मछली परियोजनाओं के लिए ऋण सम्बन्धी सहायता दे रहा है।

मरुधरा में हरे-भरे जीवन की आशा·····[पृष्ठ 23 का शेषांश]

कम है। अनुमानतः यह साल में पन्द्रह हजार रुपए तक की आय कर लेता है जिसका अधिकांश भाग वह बचा लेता है। जितने ट्रैक्टर गंगानगर में हैं उतने इसके समान रकबे वाले देश के और किसी भाग में नहीं। अगले साल जब पाकिस्तान के साथ हुई "सिंधु नदी जल-संधि" के अन्तर्गत उस देश को पानी देने की अवधि समाप्त हो जाएगी, तब नहर में और पानी आने लगेगा और सिंचाई 60 प्रतिशत से बढ़कर 80 प्रतिशत तक हो जाएगी। ऐसा होने पर किसानों का और समृद्धिशाली होना स्वाभाविक है।

लेकिन प्रगति का पथ शीघ्रता से बनकर तैयार नहीं होता, पानी को अपना रंग दिखाने में समय लगता है। जल को बीज और खाद की सहायता चाहिए। 1930-31 में गंगानगर जिले में 68 हजार एकड़ में गेहूं की खेती की गई थी। अब 1 लाख 52 हजार 385 एकड़ में गेहूं बोया जाता है। 1930-31 में जौ केवल 2,473 एकड़ में बोया जाता था, इस समय 65 हजार 130 एकड़ भूमि पर इसकी खेती होती है। यही बात संतरे की फसल के बारे में है, जिसकी खेती हाल में ही शुरू की गई। 1955 में महाराजा के फार्म में संतरे के 2600 फल उतरे थे, पिछले साल 65 हजार फल उतरे। श्री शारदा ने बताया कि प्रश्न सिर्फ पानी का नहीं बल्कि नई तकनीकों और बीज का भी है। उदाहरण के तौर पर गेहूं को लीजिए। नए किस्म के छोटे तने वाले गेहूं के आने से प्रति एकड़ उपज में 15 से 25 मन तक की वृद्धि हुई। वे कुछ रुककर फिर बोले, "नहर जल्दी ही जैसलमेर तक बन जाएगी और तब यह रेगिस्तान हरियाली से लहलहा उठेगा।"

गर्मियों की भरी दोपहरी में जैसलमेर के पास कट-कट कर उड़ने वाली रेत की पहाड़ियों के बीच खड़े व्यक्ति को यह बात निरर्थक लगेगी और तब तक लगेगी जब तक वह स्वयं शिवपुरी हेड के पास आकर अपनी आंखों से रेगिस्तान को फूला-फला नहीं देख लेगा। गंगानगर में जो कुछ हुआ उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि पश्चिमी थार में क्या हो सकता है? रेगिस्तान को न केवल आबाद बल्कि खुशहाल भी किया जा सकता है। कंकरीट की नहर निर्भय गति से जैसे-जैसे दक्षिण की ओर बढ़ेगी, वैसे वैसे लुप्त सरस्वती नदी के तट पर किसी समय आबाद सम्पन्न राज्य का पुनः उद्भव होगा।

कुकुरमुत्ता पोषक और स्वादिष्ट खाद्य

ब्रह्मदत्त स्नातक

भारतवर्ष एक शाकाहार प्रधान देश है, अतः यहां शाक सब्जियों की पैदावार एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अब यह बात भलीभांति सिद्ध हो चुकी है कि शारीरिक अवयवों और मस्तिष्क के पूर्ण विकास के लिए भोजन में प्रोटीन का स्थान सर्वोपरि है। इस दृष्टि से हमारा ध्यान दो वस्तुओं पर विशेष रूप से ठहरता है। एक तो सोयाबीन और दूसरा कुकुरमुत्ता। सोयाबीन को जनसाधारण तक पहुंचाने के लिए तथा उसकी विधिवत खेती करने के लिए पिछले दो दशकों से हमारे देश में काफी कार्य किया जा रहा है। परन्तु कुकुरमुत्ता के सम्बन्ध में हमारे देश में उपयुक्त जानकारी व उसकी खेती के तरीके का ज्ञान प्रायः नगण्य है। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो जनसाधारण में उसके प्रति हेयदृष्टि तथा दूसरे यह सन्देह कि ऐसी वस्तु खेती के लिए उपयुक्त भी है या नहीं ?

जैसा कि कुकुरमुत्ता नाम से स्पष्ट होता है, पुरानी पीढ़ी और अज्ञानवश कुछ हद तक नई पीढ़ी में भी यह धारणा प्रचलित है कि कुत्ते के मूतने पर जो बरसात में पौधा उग आता है, वह खाद्य तो क्या अस्पृश्य भी है। बचपन में हमें 'कंजर' जैसी घूमन्तू और अपराधजीवी जातियों के लोगों को अपने आहार के लिए जहां-तहां से कुकुरमुत्ता संग्रह करते देख उनकी दरिद्रता का बोध होता है। बाद में पता चला कि लकड़ी के सड़ जाने पर पानी मिट्टी के सहयोग से यह पौधा बन जाता है। बहुत बाद में इसे स्वादिष्ट कीमती खाद्य सामग्री के रूप में पंजाब व काश्मीर के घरों में 'खुम्बी' के नाम से खाते-बनाते देखकर इसकी खाद्य विषयक उपयोगिता एवं स्वाद का ज्ञान हुआ। वर्तमान वैज्ञानिक खोजों से सिद्ध हुआ है कि इसकी खेती भी की जा सकती है और किसानों के लिए वह बढ़ी हुई आमदनी का साधन बन सकती है, परन्तु इसकी खेती के लिए अधिक उपयुक्त भूमि घने जंगल की जमीन तथा पहाड़ी और वर्षा-ठण्डक वाली भूमि है।

सारे संसार में इसकी उपयोगिता को देख कर अधिकाधिक वैज्ञानिक परीक्षण किए जा रहे हैं। हमारे देश में भी सोलन (हिमाचल प्रदेश) में इस पर अनुसन्धान के लिए एक विशेष संस्थान काम कर रहा है। खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि यह वनस्पति आमिष एवं सामिष भोजी दोनों प्रकार के लोगों के लिए प्रोटीन सम्पन्न खाद्य है, जिसका पता अतीत में बहुत कम ही रहा है।

कुकुरमुत्ता के सम्बन्ध में जैसा कि पहले बताया गया, अनेक प्रकार के मिथ्या विश्वास जुड़े हुए थे। सब देशों और सब युगों में इसके सम्बन्ध में विचित्र धारणाएं और कहानियां प्रचलित रही हैं। ईसा से भी लगभग 2500 वर्ष पूर्व (अर्थात 5 हजार साल पहले) माया संस्कृति में इस वनस्पति का उल्लेख दिव्य और अलौकिक वस्तु के रूप में मिलता है। यूनानी और रोमन संस्कृतियों में इसका जन्म बिजली की कौंध से हुआ बताया गया है। रेड इंडियनों का विश्वास है कि इस पौधे का जन्म मिट्टी में प्राकृतिक बिजली के प्रवेश और कड़कड़ाहट से होता है। न्यूगिनी की स्त्रियां गर्भ निरोध के लिए इस वनस्पति का उपयोग करती देखी गई हैं। किन्हीं प्रदेशों में कामोत्तेजक औषधि के रूप में या जादू टोने के लिए भी यह वनस्पति काम में लाई जाती है। बचपन में लेखक ने सुन रखा था कि इस पौधे की छाया में सांप विश्राम करता है।

किस्में और गुण

कुकुरमुत्ता की अनेक जातियों में से कुछ विशेष किस्में ही खाद्य के रूप में प्रयुक्त हो सकती हैं। इसका कारण यह है कि अन्य कुछ किस्में खाने पर जहर के लक्षण भी पैदा करती हैं। उन के खाने पर उल्टी-दस्त शुरू हो जाते हैं। इस श्रेणी में "अमारिता" किस्म आती है। सर्वाधिक खाद्य रूप में प्रचलित कुकुरमुत्ते की किस्म का वनस्पति विज्ञान के हिसाब से नाम अगारिकस कैम्पेस्ट्रिस है। इस पौधे की जड़ तो नाम भर को होती है। शेष में ऊपर का भाग छतरीनुमा और बीच में उसकी डण्डी या तना होता है। खाद्य की दृष्टि से सर्वोत्तम भाग यही होता है। यों अच्छी तरह बनाने पर सामिष भोजी इसके व्यंजन में मांस जैसा स्वाद अनुभव करते हैं, और यों इसकी उपयोगिता तथा पोषण शक्ति असन्दिग्ध रूप से उससे कम नहीं है। यूरोप और अमेरिका में इसके व्यंजन बहुत पसन्द किए जाते हैं।

बाजार में खुम्बी या कुकुरमुत्ता सूखे रूप में बड़े मंहगे दाम में मिलता है। परन्तु सूखने से पूर्व इस पौधे में 88 प्रतिशत जल, 4 प्रतिशत प्रोटीन और 8 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट्स पाया जाता है। फोलिक एसिड, विटामिन बी और सी तथा अनेक लवणों की उपस्थिति ने इस पौधे को अत्यन्त पोषक खाद्य की श्रेणी में ला रखा है। इसमें स्टार्च बिल्कुल

भी नहीं होता, अतः मधुमेह के रोगी इसे सुगमतापूर्वक खा सकते हैं। आलू तथा अन्य शाकों की तुलना में इसमें दो गुना से अधिक प्रोटीन पाया जाता है। जंगली तथा अपने आप उपजने वाली खुब्बी से खेती द्वारा तैयार की गई खुब्बी ज्यादा पौष्टिक पाई गई है। खुब्बी के पौधों के रंग, आकार एवं गन्ध अलग-अलग तरह के होते हैं। कुछ लाल, कुछ भूरे, सफेद, नीले और पीले रंग के होते हैं। कुछ में खुशबू होती है तो कुछ उनमें से बदबूदार किस्म के भी पाए जाते हैं। अच्छी किस्म की खुब्बी उपजाने के लिए उसमें पर्याप्त स्वच्छता रखना एवं शुद्ध वायु का पहुंचाना आवश्यक है।

खुब्बी उत्पादक

आस्ट्रेलिया के विख्यात किसान मार्श लासन 10 एकड़ भूमि में लिनि-वेली में खुब्बी की खेती करते हैं। इस काम के लिए उन्होंने रेल्वे द्वारा छोड़ दी गई चार सुरंगें (टनल) ले रखी हैं। उनमें से सबसे छोटी लिनिवेली की सुरंग तिहाई मील लम्बी है, और सबसे बड़ी सवा तीन मील लम्बी है। प्रत्येक में खुब्बी पैदा करने के लिए 4,5 0 पेटियां रखी जा सकती हैं। इनमें शुद्ध वायु पहुंचाने और उसे ठंडा या नम रखने के लिए समुचित व्यवस्था है। बीजों की व्यवस्था अमरीका के पेनसिलवानिया और इंग्लैंड के ससेक्स से की गई है। खुब्बी के खेत वाली ये सुरंगें एक दूसरे से मीलों दूर हैं। अकेला यह उत्पादक वर्ष में साढ़े सात लाख पौण्ड खुब्बी पैदा करता है, जबकि समूचे आस्ट्रेलिया में इसकी उपज एक करोड़ पौण्ड है। अब इनके बीज भी वहीं तैयार होने लगे हैं।

खेती की विधि

कुकुरमुत्ता का सम्मिश्रण (कम्पोस्ट) खाद के माध्यम से ही तैयार किया जाता है। इसकी अपनी विधि है। इसके लिए नदियों से अच्छी किस्म के गेंहुए रंग के सरकंडे लेकर घोड़ों के अस्तबल में एक दूसरे से सटाकर पहले बिछा दिए जाते हैं, और सप्ताह के बाद उन्हें उपजाने की जगह लाकर बराबर-बराबर फैला दिया जाता है। तीन दिन उन्हें पानी में डुबोकर रखने के बाद वहां 9-10 दिन छोड़ दिया जाता है। बीच-बीच में उन्हें बदलते बदलते रहते हैं। तदुपरान्त 160-170 फाहरनहीट डिग्री और बाद में 135-140 डिग्री की गर्मी में उनको रखा जाता है। इस बीच 95 डिग्री की नमी बराबर रखी जाती है। आखिर में 72-75 फारहनहीट डिग्री तक गर्मी कम कर ली जाती है। इसमें सफाई रखने के लिए जो आदमी घुसते हैं, उनको अपने कपड़े, जूते और दस्ताने भी आयोडीन के घोल से कीटाणु रहित करने होते हैं। इस प्रकार कुकुरमुत्ता के पौधे बड़े उत्तम स्वाद, गंध और रंग के होते हैं और उनसे बनने वाले व्यंजन पूर्ण स्वास्थ्यप्रद और स्वादिष्ट बनते हैं।

★●★

विज्ञान प्रगति-प्रतिरक्षा विशेषांक
भारतीय भाषा यूनिट पी० आई० डी० बिल्डिंग, हिलसाइड रोड, नई दिल्ली-12; वार्षिक मूल्य—5 रु०; एक प्रति का मूल्य—50 पैसे।

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद की भारतीय भाषा यूनिट द्वारा प्रकाशित इस लोकोपयोगी पत्रिका का यह रक्षा विशेषांक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। रक्षा सम्बन्धी विभिन्न विषयों की रोचक और ज्ञानवर्धक सामग्री से भरपूर। सेना के तीनों अंगों (स्थल, जल और वायु) से सम्बद्ध सैन्य-संगठन प्रक्रियाओं और उस अंग में प्रयुक्त होने वाले विशिष्ट उपकरणों की जानकारी के अलावा देशरक्षा में अनुसन्धानरत प्रयोगशालाओं, जीवाणुअस्त्रों, रासायनिक आयुधों और आणविक विस्फोटों का भी वर्णन है।

सभी लेख अपने विषय के अधिकारी विद्वानों से लिखवाए गए हैं। लेखों में इस बात का ध्यान खासतौर से रखा गया है कि न तो वे हल्के फुल्के विवरण मात्र से बचकाने बन जाएं और न ही तकनीकी जानकारी के बोझ से इतना बोझिल बन जाएं कि केवल विशेषज्ञों के ही पल्ले पड़ सकें।

पत्रिका का मुख्य उद्देश्य यह है कि विज्ञान से सामान्य परिचय रखने वालों की जानकारी में सहज और रोचक ढंग से वृद्धि हो सके। इस दृष्टि से पत्रिका विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। सभी लेख प्रायः सचित्र हैं जिससे विषय और हृदयग्राही बन जाता है।

पत्रिका की असामान्य विशेषता की ओर भी ध्यान खींचना आवश्यक है। बड़े आकार के 144 पृष्ठों में वैविध्य-पूर्ण प्रामाणिक सामग्री का संचय और कुशल सम्पादन होने पर भी मूल्य वही पचास पैसे जो किसी भी सामान्य अंक का होता है। पत्रिका प्रसार की सुपात्र है।

मुक्ति की राह पर

सुलेमान टाक

ब्रजेश उर्फ बिरजू की वयोवृद्ध माता का देहान्त हो गया। यद्यपि बिरजू किसी चीज का मोहताज नहीं था, फिर भी मां तो मां ही होती है, उसके गुजर जाने पर उसे लगा जैसे वह अनाथ हो गया है, यह बात और है कि वह स्वयं अपने गांव का 'नाथ' था अर्थात् सरपंच था। धन-धान्य से भरा-पूरा था उसका घर, उसका खानदान बिरादरी में सदैव प्रतिष्ठित घरानों में से रहा है, पीढ़ियों से उसके पूर्वज गांव के चौधरी कहलाते थे। बिरजू भी अपने खानदान की प्रतिष्ठा को निभाने वाला सज्जन था। उसका चरित्र उज्ज्वल था, बेदाग था। जनसेवा ही उसके जीवन का लक्ष्य था।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण होते ही पंचायतीराज की स्थापना पर सुरपुरा गाव के नागरिकों में गांव का सरपंच किसे चुना जाए इस विषय पर नोंक-झोंक का प्रश्न ही पैदा नहीं हुआ। उस समय तक बिरजू गांव के बड़े-बूढ़ों की नजर में एक आदर्श नागरिक के रूप में छा चुका था, युवकों में वह बड़ा लोकप्रिय था। उसके हृदय में अपने गांव के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था और वह अपने प्रगतिशील विचारों से गांव को एक आदर्श ग्राम का रूप देना चाहता था। वह चाहता था कि उसका सुरपुरा वास्तव में देवनगर ही बन जाए। ग्रामीण जनता ने भी बिरजू को सर्वसम्मति से गांव का सरपंच चुन कर उसके आदर्श में निष्ठा रखते हुए अपने गांव को उसी के हवाले कर दिया था।

बिरजू की योजनाओं ने सुरपुरी को चमन बना दिया। गांव में स्कूल ज्ञान का प्रकाश फैलाता, सहकारी खेती के कारण खेत सोना उगलते, महिला मण्डल ग्रामदेवियों को गृहस्थी की बातें बताता, साक्षर करता तथा सिलाई, बुनाई जैसे कार्यों की भी शिक्षा देता, न्यायपंचायत गांव के छोटे-मोटे विवादों को न्यायपूर्ण ढंग से सुलझा कर लोगों को शोषण और अन्याय से बचाती। औषधालय में शारीरिक रोगों का उपचार होता। रात में जगह-जगह जलते दीपक अंधेरे में लोगों को मार्ग दिखाते, गांव को स्वच्छ रखा जाता। पर अभी भी गांव में कुछ कमी थी अवश्य। लोगों के दिमाग में रूढ़ियों के रूप में कुरीतियां घर किए थी, यद्यपि नवयुवक इन कुरीतियों से मुक्त होना चाहते थे पर बूढ़े-बड़े तो जैसे उनके मार्ग के रोड़े ही बने बैठे थे। मृत्युभोज जैसी कुरीति को वे जैसे पालते ही जा रहे थे। उनकी नजर में मृत्युभोज ही जीवात्मा की मुक्ति का विकल्प था।

बिरजू की मां की मृत्यु का समाचार सगे सम्बन्धियों में पहुंचा। लोगों ने बिरजू के घर पहुंच कर लोक व्यवहार के अनुसार झूठे-सच्चे आंसू बहाकर अपने गम को प्रकट किया, सहानुभूति दरशाई। चार दिन बाद आंसू थम गए। नई बातें, यद्यपि वे थीं तो रूढ़िगत बातें ही, लोगों की जबान पर चढ़ने लगीं। बिरादरी के लोग बिरजू के घर उसकी मां की द्वादशी पर पांचों घी में करने के मसविदे से गढ़ने लगे। कोई हलुआ, कोई मालपुआ तो कोई लड्डू, रबड़ी के अन्दाज लगाने लगा। इन सब बातों में बिरजू का क्या खयाल है इसकी किसी को परवाह ही नहीं, मानो माल उड़ाना तो बिरजू की मां के मरते ही उनका अधिकार ही था।

एक ही बिरादरी के दो आदमी मिलते तो राम-राम के बाद मानो बातचीत का विषय ही बिरजू की मां की द्वादशी ही थी। एक कहता, भैया। बिरजू कब चिट्ठियां लिख रहा है? दूसरा कहता, "भई। मुझे तो इन तिलों में तेल दीखता नहीं।" फिर कोई बीच में ही छलांग-सी लगा देता—अरे! सारी उम्र बिरादरी का खाया है, अब नहीं कैसे खिलाएगा। बिरादरी धूल नहीं डालेगी उसके मायने में।

कोई व्यंग-सा कसता -"सुधारवादी है वह तो।"

उत्तर आता—"कंजूस है साला! सुधार के नाम पर खर्च से मुंह छिपाता है।"

कोई ताना मारता—"अरे! कोरा पैसा होने से क्या होता है, दिल चाहिए दिल···।"

बिरादरी का खयाल चाहे कुछ भी हो पर बिरजू का ध्यान तो था अपने गांव पर। वह देखता था कि मृत्युभोज की यह कुरीति कई घरों में झूठी शान रखने के बहाने कंगाली फैला गई। कर्ज में डुबा गई। वह जानता था कि कोई भी व्यक्ति मृत्युभोज पर खुशी से खर्च नहीं करता, बिरादरी के दो समय के भोजन के लिए एक बार कर्ज में डूब कर बरबाद हो जाना किसी प्रकार औचित्यपूर्ण नहीं था। लोग मृत्युभोज करके पछताते हैं, पर झूठी शान रखने के लिए खड्डे में गिरते हैं। सब चाहते हैं कि धार्मिक संस्कार के नाम पर होनेवाले इस अपव्यय को बन्द कर दिया जाए पर इसे करने में पहल कौन करे? बिरादरी में आलोचना का केन्द्र कौन बने? कोई तैयार नहीं होता इस काम में पहल करने के लिए और मृत्युभोज चलते रहे। लोग ऋण में डूबते रहे। बिरजू लोगों को समझाता और मृत्युभोज पर व्यय नहीं करने को उकसाने का प्रयत्न करता पर लोग यही कहते—"भला मैं अपने

घर पर ऐसा धब्बा क्यों लगा दूं कि बिरादरी हमेशा के लिए मुझे कोसती रहे।"

नेता का काम है नेतृत्व कर समाज को प्रगति के मार्ग पर आरूढ़ करना। बिरजू इस बात को खूब समझता था। उसने विचार किया कि मृत्युभोज पर होनेवाली फिजूलखर्ची को रोक कर जनहित के लिए मां की स्मृति में यह राशि लगानी चाहिए और यह नेक काम उसे अपने घर से ही प्रारम्भ कर समाज को कुरीति का त्याग करने की दिशा देनी चाहिए। बिरजू ने यह संकल्प तो कर लिया पर बात अभी उसके मन में ही थी।

बिरजू के मामा बैठने आए। शाम को एकान्त होने पर उन्होंने बिरजू से द्वादशी पर मृत्युभोज के विषय में बातचीत करना चाहा। वे बोले, "बिरजू! अब क्या करना है?"

"मामा! करना क्या है, जानेवाली तो चली गई। हमारा क्या जोर चलता है, ईश्वर की मर्जी के आगे।" बिरजू ने उत्तर दिया।

मामा कुछ बेचैन से हो कर बोले—"वह तो ठीक है, बिरजू। पर मेरा मतलब है उसके पीछे क्या करना है? द्वादशी नजदीक है। बिरादरी को हम पर अंगुली उठाने का अवसर नहीं मिलना चाहिए। वरना हमारी शान पर हमेशा के लिए बट्टा लग जाएगा और···" बिरजू बीच में ही बोल पड़ा—"मामा! धार्मिक संस्कार मां की आत्मा की शान्ति के लिए मैं पण्डित दीनदयालजी से पूरे करवा ही रहा हूं।" मामा कुछ तिलमिला कर प्रश्न-सा करने लगे—"पर, बिरादरी?"

बिरजू ने अपने दिल की बात को प्रकट किया—"मामा! भोज तो शादी विवाह जैसे खुशी के मौकों की बातें हैं। मृत्यु पर माल-मलीदे उड़ाना तो शोभा नहीं देता।"

"बिरजू! बूढ़ी मौत तो विवाह जैसी ही होती है" मामा ने अजीब-सा तर्क रखा।

"पर मामा! आत्मा की शान्ति के नाम पर यह पैसे की बरबादी, यह फिजूलखर्ची क्यों?" बिरजू ने अच्छे अच्छों को निरुत्तर कर देने वाला प्रश्न सामने रखा।

बड़े ही दुःखी स्वरों में मामाजी बोले "हाय राम। कैसा समय आया है, फिजूलखर्ची कहते हो इसे? क्या पूर्वज मूर्ख थे जो यह रीत निकाल गए?"

"मामा! मैं उन्हें मूर्ख नहीं कहता, हो सकता है उनकी नजर में वह अच्छी बात रही हो पर आज मेरी दृष्टि में यह व्यय औचित्यपूर्ण नहीं है। मैं बिरादरी के लिए मृत्युभोज पर पैसा बरबाद कर बिरादरी के गरीब लोगों के सामने एक कुरीति पर पानी की तरह पैसा बहा देने का उदाहरण नहीं रख सकता।" कुछ रुक कर बिरजू ने कहा, "हर बात में "बाबा वाक्यम् प्रमाणम्" नहीं होने, मामा!"

"मां के नाम पर क्यों कंजूसी करते हो बिरजू!" मामा ने एक और वार किया।

मामा मैं कंजूसी नहीं करता। पैसा खर्च करूंगा, अपनी मां के नाम पर ऐसे काम में जिसमें जनता का हित हो, निर्माण कार्य हो और आगे के लिए अन्धविश्वासपूर्ण कुरीतियों पर अपव्यय का अन्त हो जाए और यह काम मेरे ही घर से प्रारम्भ होना चाहिए, मैं गांव का अगुआ हूं ना।"

"ऐसा क्या कर दोगे तुम?" मामा ने जायजा लेना चाहा।

"मामा!" बिरजू ने कहना शुरू किया "आप जानते हैं कि हमारे गांव में पानी का कितना अभाव है। लोगों को पीने के पानी की कितनी तकलीफ उठानी पड़ती है। लोग अब भी तालाब का पानी पीते हैं। गर्मी के दिनों में कितना गन्दा हो जाता है वह पानी, जिसको पीने से कई लोग बीमार पड़ते हैं। मैं चाहता हूं कि मां की पावन स्मृति में गांव के बीच एक बड़ा और गहरा कुआं खुदवा कर गांव को अर्पित कर दूं जिससे लोगों को स्वच्छ जल उपलब्ध हो सके। पानी ही जीवन है। भला मां की स्मृति में इससे पुनीत काम और क्या होगा? तथा पैसे का सदुपयोग इससे अच्छा क्या होगा? इसके साथ ही जब कुएं पर काम चलेगा तो गांव के दस पन्द्रह लोगों को माह भर के लिए मजदूरी मिलेगी।"

मामा आश्चर्य के साथ बिरजू के मुंह की ओर एक टक देख कर उसकी बात सुन रहे थे। वे बोले, "खयाल तो नेक है, बिरजू, पर बिरादरी?

"मामा! मेरे गांव के लोग तो पानी के लिए तरसें और हमारी बिरादरी पकवानों पर हाथ साफ कर पैसे की धूल उड़ा दे, बताओ यह कहां तक ठीक है? क्या यह गांव मेरा अपना नहीं है? फिर मामा अच्छी बात तो अच्छी बात ही है, आज नहीं तो कल सबको मेरे कार्य की प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। मेरे पहल करते ही अन्य लोगों के दिल से समाज द्वारा की जाने वाली आलोचना का डर निकल जाएगा। लोग मेरा उदाहरण देकर मृत्युभोज से बचते रहेंगे। बिरादरी खुद मृत्युभोज का तिरस्कार करने लग जाएगी। बस, मुझे पहल कर लेने दीजिए।"

बिरजू ने अपने संकल्प के अनुसार पांच-छः हजार रुपए की एक योजना के अनुसार गांव के बीच कुआं खुदवाया, नेक नीयत का नेक ही फल निकला। कुएं में मीठा दूध-सा पानी निकला। कुएं पर पानी निकालने के लिए 'हैंडपम्प' लगवा दिया तथा जानवरों के पानी पीने के लिए एक कुण्ड भी बनवाया। कुएं पर उसने यह शिलालेख अंकित करवाया।

"द्वादशी संस्कार पर होने वाले मृत्युभोज का बहिष्कार करते हुए अपनी स्वर्गीय माता की पावन स्मृति में निर्मित यह कुआ सुरपुरी के नागरिकों को सादर समर्पित।" -- ब्रजेश

बिरजू ने बिरादरी की कुरीति का बहिष्कार किया किन्तु इस कुएं के उद्-

शेष पृष्ठ 34 पर]

कहानी

पीपल का पेड़

ओमदत्त वत्स

गीताराम अपने खेत में बैठा प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य को अपनी आंखों से पी रहा था। प्रातःकाल और दूर तक फैले हुए हरे भरे खेत और ऊंचे ऊंचे पेड़, पहाड़ी वायु सांसों में अमृत घोलती दिखाई देती थीं। इस वर्ष खेती भी कुछ अच्छी थी। कई साल से किसान अपनी मेहनत का फल भी नहीं पा रहे थे। ऐसे समय में किसान का बेटा अपने सारे धन को अपनी आंखों के सामने फैला देखकर खुशी से फूला नहीं समाता।

अचानक उसका ध्यान सामने खड़े बहुत बड़े पीपल के पेड़ की ओर गया। उसका दिल प्यार और श्रद्धा से भर गया। न जाने इतनी मुद्दत से खड़े इस पीपल के पेड़ से उसे इतना लगाव क्यों हो गया था। वह उसके साए में बैठकर ऐसा अनुभव करता था जैसे मां की गोद में बैठा हुआ है। उसके दादा ने उसे बताया था कि इस पेड़ को बहुत दिनों पहले उसके बाप ने लगाया था। गीताराम कभी उस पेड़ से एक टहनी भी नहीं तोड़ता था। उसे पेड़ के साए से दिली लगाव सा था।

गीताराम अभी कुछ महीने का ही था जब उसकी मां उसे छोड़ कर इस संसार से चली गई थी। बिना मां का बच्चा तूफानों से घिरा हुआ जीवन की नाव को आगे बढ़ाने लगा। जीव भी क्या चीज है। जब इसकी इच्छा न हो तो मिल जाता है और इच्छा हो तो धोखा दे जाता है। मां का सहारा हट जाने पर भी गीताराम जीवित रह गया। बाप भी अपने बेटे की अधिक समय तक देखभाल नहीं कर सका। और जब गीताराम केवल पांच वर्ष का ही था, तो चल बसा। ऐसी अवस्था में अभागे दादा ने ही उसके पालन पोषण का भार अपने ऊपर लिया। गीताराम अब जवान हो चला था और घर के काम काज में अपने दादा की सहायता करने के साथ साथ अपने खेतों की रखवाली भी करता था। उसके जीवन में यदि कोई आशा की किरण थी तो केवल यही कि उसके पास बीस बीघे जमीन थी। ऐसे पहाड़ी प्रदेश में इतनी जमीन होना एक सौभाग्य की ही बात थी। बिना जमीन के गांव में रहना कितना कठिन होता है यह तो वही जान सकते हैं जिनके पास जमीन न हो। इसी जमीन की कमाई पर दोनों दादा-पोता अपने जीवन के दिन काट रहे थे।

जड़, जोरू, जमीन सदा से ही झगड़े की वस्तु रहे हैं। शायद यही बात थी जो गीताराम की जमीन पर भी किसी की बुरी निगाह थी। उन दोनों को इस बात का ध्यान भी नहीं था कि कोई उनकी इस इकलौती पूंजी पर नजर गाढ़ बैठा है। उसी गांव में एक और चौधरी रहता था जिसके पास जमीन न के बराबर थी। गीताराम की जमीन उसकी थोड़ी सी जमीन से सटी हुई थी, जिसे देखकर उसके मुंह में पानी भर आया था। यह उसकी बहुत पुरानी चाह थी कि यदि यह जमीन भी उसकी हो जाए तो मौज ही मौज होगी। अपनी इस कुचेष्टा को पूरा करने के लिए उसने बहुत विचार किया। वह कई दिनों तक कोई योजना बनाने में असफल रहा। अन्त में एक दिन उसने एक तरकीब सोच ही ली। अपनी बेटी धनिया को देखकर वह खुशी से झूम उठा। आह! कितना अच्छा सौदा है। धनिया की शादी गीताराम से कर दी जाए। फिर कुछ दिनों बाद काम बन जाएगा। वह मन ही मन बुदबुदाया। उसने तुरन्त अपनी लड़की को बुलाया और उसके कान में कुछ कहा। धनिया बेचारी एक गंवार लड़की तो थी ही, फिर भी बाप से ऐसी बातें सुनकर कुछ शरमा गई। किन्तु फिर उसके जोर देने और परिवार की भलाई का विचार करके उसने बाप के कहने पर अमल करने की हां भर दी।

धनिया की दोस्ती से गीताराम के सूखे जीवन में एक बहार सी आ गई। उसे लगा कि मां का प्यार न मिलने से उसके जीवन में जो अभाव बना हुआ था उसे धनिया के साथ ने दूर कर दिया है। वह उसके जीवन में रस घोलने लगी। उसके बिना अब गीताराम का दिल ही नहीं लगता था। वह रात बड़ी कठिनाई से काटता और इस प्रतीक्षा में रहता कि कब दिन निकले और और वह खेतों में जाकर अपनी प्रेमिका के साथ हंसी और आनन्द के समुद्र में डूब जाए। धनिया ने गीताराम को बातों ही बातों में यहां तक बता दिया कि वह अपने मां बाप से कहकर गीताराम से ही शादी करेगी। उसके भोलेपन, यौवन और मुस्कराहटों को देखकर गीताराम पागल सा हो जाता था। अब धनिया ही उसकी सब

कुछ थी। किसी दूसरी लड़की के बारे में वह अब सोच भी नहीं सकता था। शादी की बात सुन कर तो वह निहाल हो गया।

एक दिन धनिया और गीताराम शादी के पवित्र बंधन में बांध दिए गए। बूढ़े दादा अपने घर को किसी गृह लक्ष्मी से आबाद करना ही चाहते थे। उनकी बहुत दिनों से चाही हुई बात इतनी आसानी से पूरी हो गई। यह क्या कोई मामूली बात थी। वर्षों बाद अपने सूने घर में एक चांद का टुकड़ा दुल्हन के रूप में पाकर बूढ़े की आंखों की ज्योति कुछ तेज हो चली थी। उसने अपने और गीताराम के भविष्य के बारे में न जाने क्या क्या स्वप्न देख डाले। एक सच्चे सुख की अनुभूति उसे हो रही थी। शायद इसलिए शादी के बाद उन्हें अपने सिर का कुछ बोझ हल्का सा लगने लगा था। शिकार जाल की ओर बढ़ चला था। उसे क्या पता था कि उसने जो घोंसला बनाया था, उस पर बिजली गिरना चाहती है।

शादी के केवल दस दिन बाद ही एक दिन शाम का भोजन करके अचानक ही गीताराम का स्वास्थ्य खराब हो गया। उसे चक्कर आने लगे। धनिया ने रोना पीटना आरम्भ कर दिया। बूढ़ा यह सब कुछ देखकर सन्नाटे में आ गया और उसे लगा जैसे जीवन की डोर उसके कमजोर हाथों से छूटी जा रही है। गांव के हकीम को बुलाया गया। उसने बताया कि गीताराम को जहर दिया गया है। उस बेचारे ने तो आज केवल खाना ही खाया था, फिर जहर धनिया के अलावा और कौन देगा? यह तो उसके दिन अच्छे थे जो जहर कम ताकत का था और थोड़े बहुत उपचार से वह बच गया। गीता की पड़ोसन ने उसे यह भी बताया था कि किस प्रकार धनिया के मां बाप ने शादी से पहले ही गीताराम को मारने की योजना बना ली थी। उस दिन के बाद से गीताराम और धनिया नदी के दोनों किनारों की तरह सदा के लिए अलग हो गए।

जहर के प्रभाव, धनिया की बेवफाई और सूने जीवन ने गीताराम का दिल तोड़ दिया। उसका शरीर कमजोर होता गया और वह बीमार रहने लगा। यहां तक बात पहुंची कि उसके फेफड़े में खराबी आ गई। वह पास के कस्बे के अस्पताल में गया। डाक्टरों ने टी० बी० होने का निर्णय दे दिया। बड़ी दौड़ धूप करने से उसे अस्पताल में दाखिला मिल गया। तीन साल तक इलाज होते रहने पर भी रोग बढ़ता ही चला गया। इस दौरान दादा भी गीताराम को अकेला छोड़ कर दूसरे संसार में चले गए। उस बेचारे के दुख का कोई ठिकाना न रहा। उसे लगा कि वह मौत के निकट होता जा रहा है। एक दिन समाचार आया कि पीपल का पेड़ गिर गया है। गीताराम के दिल पर एक कड़ी चोट लगी। अब इस लम्बी चौड़ी दुनिया में उसका कोई न रहा था। अब जीवन और मृत्यु दोनों ही उसके लिए एक समान थे।

लम्बी बीमारी को देखकर डाक्टर भी निराश हो चुके थे। केवल आपरेशन की ही कसर बाकी थी जिससे शायद जीवन बच जाए। गीताराम को जब यह बताया गया तो उसका दिल बैठ गया। फिर भी "जब तक सांस तब तक आस" का विचार करके वह राजी हो गया। उसने सोचा इस प्रकार एड़ियां रगड़-रगड़ कर मरने से तो आपरेशन के समय मरना ही अच्छा रहेगा। पहला आपरेशन हुआ किन्तु दुर्भाग्य ने साथ न छोड़ा। दूसरे के बाद भी तीसरे आपरेशन की जरूरत पड़ी। लम्बी बीमारी और दो आपरेशनों में अधिक खून बह जाने के कारण गीताराम सूखकर कांटा हो गया था। किन्तु डाक्टरों के कहने पर वह एक बार फिर मृत्यु से लोहा लेने के लिए तैयार हो गया। आपरेशन के कमरे में जाने से पहले इच्छा व्यक्त की कि अब उसका इस दुनिया में कोई नहीं है और यदि उसकी मृत्यु हो जाए तो गांव में पड़ी उसकी बीस बीघे जमीन को गांव के लिए एक छोटे अस्पताल के लिए दे दिया जाए। उसके बहुत जिद करने पर उससे वसीयत लिखवा ली गई। जब उसे आपरेशन की मेज पर ले जाया गया तो उसे लगा जैसे वह जिन्दगी की आखिरी मंजिल तय कर रहा है। डाक्टरों के बहुत प्रयत्न करने के बावजूद भी गीताराम का आपरेशन सफल नहीं हो पाया और वह इस दुनिया से चल बसा। रोग और रोगी दोनों ही समाप्त हो चुके थे।

अगले दिन अस्पताल के अधिकारियों ने गीताराम का शव और उसकी वसीयत गांव के लोगों को सौंप दिए। लाश को गांव में लाया गया। पीपल के पेड़ के बहुत से टुकड़े आज भी खेत में पड़े थे। गांव वालों ने गीताराम के खेतों के बीच जहां कभी पीपल खड़ा रहता था उसकी चिता तैयार की और उन्हीं सूखी लकड़ियों को चिता पर चुन दिया। गीताराम की अन्तिम यात्रा पूरी हो गई।

कई सालों बाद गीताराम का दान रंग लाया। गांव के लोगों ने आपसी सहयोग और सरकारी सहायता से उसकी जमीन के बीचोंबीच अस्पताल के लिए एक सुन्दर भवन का निर्माण करा दिया। गीताराम अब इस संसार में नहीं रहा किन्तु उसके त्याग और दान की भावना ने उसे अमर कर दिया। अब जो कोई भी उस अस्पताल का लाभ उठाने जाता है, गीताराम का नाम उसकी जबान पर आए बिना नहीं रहता, आज भी लोगों के दिलों में उसके लिए श्रद्धा, सम्मान और प्रेम विद्यमान है। सच ही तो है कि ऐसे लोग मर कर भी अमर हो जाते है।

केन्द्र के समाचार

भण्डारण क्षमता

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा चलाई गई योजना के अन्तर्गत सहकारी विपणन समितियों को गोदाम बनाने के लिए लगभग 15 करोड़ रुपए की सहायता दी जाएगी। 9 करोड़ 40 लाख रुपए राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा ऋण के रूप में दिए जाएंगे और शेष 5 करोड़ 60 लाख रुपए राज्य सरकारें वित्तीय सहायता के रूप में देंगी।

इस योजना का पूरा कार्यान्वियन हो जाने पर चौथी पंचवर्षीय योजना के आखिरी दो वर्षों में 10 लाख मीट्रिक टन की अतिरिक्त भण्डारण क्षमता तैयार हो जाएगी।

यह एक केन्द्र प्रायोजित परियोजना है, जिसमें सहकारी क्षेत्र की भण्डारण क्षमता में 20 लाख मीट्रिक टन की वृद्धि का प्रस्ताव है।

कृषि विशेषज्ञ

भारत में हुए कृषि विकास का अध्ययन करने के लिए जून 1972 से जून 1973 तक की अवधि के बीच, सोवियत संघ से 8 शिष्टमण्डल भारत आएंगे और भारत से कृषि विशेषज्ञों के 12 शिष्ट मण्डल सोवियत संघ जाएंगे जिससे सोवियत संघ में कपास, गेहूं, चावल और सूर्यमुखी पर हुए अनुसन्धानों का निकट से अध्ययन किया जा सके। सोवियत संघ के विशेषज्ञ भारत में गेहूं और चावल पर हुए कार्य का अध्ययन करेंगे।

छोटी बचत

चालू वित्त वर्ष के लिए छोटी बचत का लक्ष्य 2 अरब 50 करोड़ रुपए निर्धारित किया गया है। संशोधित अनुमानों के अनुसार 1971-72 को कुल जमा राशि 2 अरब 20 करोड़ 50 लाख रुपया होगी और इस प्रकार चौथी पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्षों में कुल जमा राशि 5 अरब 44 करोड़ 50 लाख रुपया हो जाएगी। इसके अलावा बाकी दो वर्षों में 4 अरब 56 करोड़ रुपए इकट्ठे करने होंगे।

छोटी बचत के दो सफल जिला संगठनकर्त्ताओं को शील्ड और नकद पुरस्कार दिए गए। पहला पुरस्कार मैसूर के शिमोगा जिले के श्री जी० वी० पाटिल को तथा दूसरा पुरस्कार मध्यप्रदेश के रायपुर जिले के श्री के० ए० अन्सारी को मिला।

ग्रामीण छात्रों को छात्रवृत्ति

ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभाशाली बच्चों को माध्यमिक स्तर पर छात्रवृत्ति देने के लिए भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय छात्रवृत्ति योजना तैयार की है। इस योजना के अन्तर्गत 10,000 छात्रवृत्तियां प्रतिवर्ष ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभाशाली बच्चों को दी जाएंगी। यह छात्रवृत्ति छात्रावास में रह रहे छात्रों को 1,000 रुपए प्रतिवर्ष तथा अन्य छात्रों को 500 रुपए प्रतिवर्ष की दर से दी जाती हैं।

नई ओसाई मशीन

कोयम्बतूर के राजकीय कृषि विश्वविद्यालय की इंजीनियरिंग वर्कशाप ने 1 हार्सपावर बिजली की मोटर से चलने वाली ओसाई मशीन बनाई है जिसमें फीडिंग हाप्पर, ब्लोइंग चेम्बर के अलावा भूसे, धान और छिल्के उतरे धान के लिए अलग-अलग खाने हैं। चावल आसानी से बोरों में भरा जा सकता है। 8 घंटे में 8 टन धान की ओसाई की जा सकती है जिसके लिए सिर्फ चार व्यक्ति चाहिए, दो धान की पूलियां अन्दर धकेलने वाले और दो साफ धान इकट्ठा करने वाले। इसकी कीमत मोटर के अलावा 950 रुपए है।

पशु चिकित्सा विद्यालय

1886 में भारत में पहला पशु-चिकित्सा महाविद्यालय बम्बई में प्रारम्भ हुआ था। ब्रिटिश काल में पशु-चिकित्सा की आवश्यकता सिर्फ शासन के डेरी फार्मों और घोड़ों की देखभाल के लिए महसूस की गई थी। बाद में 1892 में कलकत्ता, 1903 में मद्रास और 1930 में बिहार में पशु-चिकित्सा महाविद्यालयों की स्थापना की गई। 1946-47 में हैदराबाद, मथुरा, जबलपुर और गोहाटी में पशु-चिकित्सा महाविद्यालय खोले गए। उस समय देश के अन्य भागों से लोगों को छात्रवृत्तियां देकर इन महाविद्यालयों में पढ़ने के लिए भेजा जाता है। 1950 से 58 के बीच बीकानेर, भुवनेश्वर तिरुपति, महू, नागपुर और बंगलोर तथा 1960 से 64 के बीच पंतनगर, रांची तथा आनन्द में ये महाविद्यालय खोले गए।

स्वतन्त्रता के बाद पशु-चिकित्सा की शिक्षा में प्रसार और विकास के लिए भी अनेक उपयोगी कदम उठाए गए हैं। इस समय पशु चिकित्सा प्रदान करने का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों को पशु-स्वास्थ्य और पशु-विकास की समस्याओं से अवगत कराना है। इस समय देश के विभिन्न राज्यों में 19 चिकित्सा महाविद्यालय हैं जिनमें प्रतिवर्ष लगभग 12 हजार स्नातक शिक्षा ग्रहण करके उपाधि प्राप्त करते हैं।

गेहूं का मूल्य

नई दिल्ली में 13 अप्रैल 1972 को सम्पन्न खाद्य-सम्मेलन में राज्यों के मुख्य मन्त्रियों ने अपनी स्पष्ट राय दे दी है कि गेहूं का मूल्य 76 रुपए प्रति क्विण्टल ही रखा जाना चाहिए तथा उसे घटाया नहीं जाना चाहिए। मुख्य मन्त्रियों का तर्क था कि मूल्य घटाने से छोटे किसान ही ज्यादा प्रभावित होंगे क्योंकि कृषि उत्पादन में लागत खर्च भी बढ़ गया है।

मुख्य मन्त्रियों की इस राय से गेहूं के खरीद मूल्य में कोई परिवर्तन न करने का निर्णय ले लिया गया है।

एफ्लेटाक्सिन

केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसन्धान संस्थान मैसूर ने खाद्य पदार्थों से एफ्लेटाक्सिन अलग करने की विधि ईजाद की है।

मूंगफली से बने पदार्थ बहुधा एफ्लेटाक्सिन नामक जीव-विष से जहरीले हो जाते हैं। इस विधि के अनुसार मूंगफली से एफ्लेटाक्सिन रहित एवं गंधरहित खाद्य पदार्थ बनाए जा सकेंगे जो रंग में आकर्षक होंगे और पानी में घुलनशील होंगे। ये पदार्थ यों ही खाने के काम में लाए जा सकते हैं तथा प्रोटीन युक्त अन्य खाद्यों में भी मिलाए जा सकते हैं। पदार्थ प्रोटीनयुक्त होते हैं और आइस-क्रीम बनाने में भी काम में लाए जा सकते हैं।

प्रशिक्षण प्रयोगशालाएं

पूर्ति विभाग की 1971-72 की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया है कि 1970-71 के 42 करोड़ 63 लाख रुपये के मुकाबले 1971 में अप्रैल से नवम्बर तक लघु उद्योगों से कुल 54 करोड़ 90 लाख रुपए का माल खरीदा गया। पूर्ति विभाग की यह नीति रही है कि लघु उद्योग के क्षेत्र का विस्तार किया जाए। लघु उद्योगों से खरीदी जाने वाली वस्तुओं की सूची पर समय-समय पर विचार किया जाता है और नई वस्तुएं सूची में जोड़ी जाती हैं। इस समय ऐसी वस्तुओं की संख्या 167 है।

परीक्षण प्रयोगशालाएं

रिपोर्ट में कहा गया है कि वस्तुओं की जांच और इनके मूल्य निर्धारण, उद्योगों की समस्याओं के बारे में अनुसन्धान, इंजीनियरी वस्तुओं के समय से पूर्व खराब हो जाने आदि से सम्बन्धित जांच आदि का काम बढ़ जाने से कलकत्ता और बम्बई की राष्ट्रीय परीक्षण प्रयोगशालाओं का कार्यभार बढ़ गया। रक्षा विभाग सहित कई सरकारी विभागों और उप-क्रमों की ओर से प्रयोगशालाओं ने कई निर्माण कार्यों के विस्तृत परीक्षण किए हैं। कई प्रकार के बिजली उपकरणों, धातुओं और रसायनों के भी इन प्रयोगशालाओं में परीक्षण किए गए हैं।

मुक्ति की राह पर·········[पृष्ठ 10 का शेषांश]

घाटन के लिए निमन्त्रित किया अपनी बिरादरी के सबसे प्रतिष्ठित पंच जीवन लाल को। इस अवसर पर उसने अपनी बिरादरी के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी निमन्त्रण दिया। अच्छे काम की सर्वत्र प्रशंसा होना स्वाभाविक है ही। स्वयं जीवनलाल ने उद्घाटन भाषण में बिरजू के समाज सुधार सम्बन्धी इस जन-सेवा के कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस अवसर पर बिरजू ने अपने धन्यवाद के दो शब्द कहते हुए कहा : "भाइयो! और बहनो! हमारा देश स्वतन्त्र है पर हम अभी तक कई सामाजिक कुरीतियों की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं जिसके कारण हम प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं हो पा रहे हैं। समाज के विकास के लिए नवयुवकों को ऐसे ही साहसपूर्ण ढंग से कुरीतियों का विरोध कर निर्माण कार्यों में धन लगाना चाहिए जिससे हम सबका अर्थात् देश का भला हो सके। अगर हमारे समाज के अगुआ अर्थात् बड़े बूढ़ों का सहयोग इस कार्य में मिलता रहे तो मुझे विश्वास है कि युवक कुरीतियों की कई बेड़ियों से मुक्त हो सकते हैं।"

बिरजू के शब्दों को सुन कर बूढ़े पंच एक-दूसरे की ओर देख कर मानो आंखों-ही-आंखों में एक दूसरे को सम्बोधित कर रहे थे—"हम ही तो हैं नवयुवकों की प्रगतिपथ के रोड़े।"

उसी दिन से उद्बोधित हो बिरजू की बिरादरी के पंचों ने सभा करके मृत्युभोज को सदा के लिए बन्द करने का निर्णय लेकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। रूढ़िवादी लोगों ने बिरजू की निन्दा अवश्य की पर धीरे-धीरे उनका स्वर स्वतः दब गया।

बिरजू द्वारा खुदवाया हुआ कुआं अब समस्त गांव की सम्पत्ति है। ग्रामवासी उसके मीठे जल को पी कर बिरजू की मन-ही-मन सराहना करते हैं और साथ ही उसकी मां फूल कुंवर, जिसकी स्मृति में यह कुआ एक कुरीति के अन्त के स्मारक रूप में खड़ा है, को याद करते हुए लाखों दुआएं देते हैं। बिरजू भी अपने इस रचनात्मक कार्य को देख कर मन ही मन सन्तोष का अनुभव करता है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि लोग इसी तरह कुरीतियों से मुक्त हो कर जनहित में अपना तन, मन, धन, न्यौछावर करते रहें। ✯

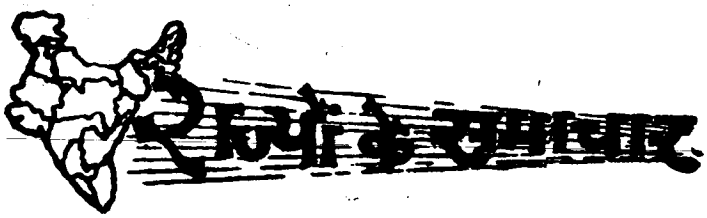

उत्तर प्रदेश

उर्वरक उत्पादन

भारतीय उर्वरक निगम के गोरखपुर स्थित कारखाने ने 1971-72 में 1,65,000 टन यूरिया उत्पादन कर नया रेकार्ड स्थापित किया। यह उत्पादन कारखाने की कुल उत्पादन क्षमता का 95% है। 1970-71 और 1969-70 में कारखाने का यूरिया उत्पादन क्रमशः 1,47,286 टन और 1,58,006 टन रहा।

गत मार्च मास में कारखाने में 15,968 टन यूरिया तैयार किया गया। गत दो वर्षों में किसी महीने में भी फैक्टरी में इतना उत्पादन नहीं हुआ। गोरखपुर कारखाने की उत्पादन क्षमता बढ़ा कर 2,85,000 टन वार्षिक तक करने की योजना स्वीकृत हो चुकी है।

क्रय-केन्द्र

रबी फसल के समय राज्य सरकार, भारतीय खाद्य निगम तथा प्रादेशिक सहकारी संघ द्वारा गेहूं की सीधी खरीद के लिए राज्य में लगभग 2,200 क्रय-केन्द्र खोलने के सम्बन्ध में पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है।

जन-जातियों के लिए घर

राज्य सरकार ने उत्तराखण्ड में अनुसूचित जन-जातियों के व्यक्तियों के लिए मकानों के निर्माणार्थ चालू वित्तीय वर्ष में 90,000 रुपए की धनराशि स्वकृत की है। इस धनराशि का जिलेवार वितरण इस प्रकार है : पिथौरागढ़ और चमोली में से प्रत्येक को 36,000 रुपये तथा उत्तरकाशी को 18,000 रुपए।

मध्य प्रदेश

आदिवासियों को सहायता

राज्य सरकार ने 1971-72 में रीवा जिले के आदिवासियों, हरिजनों और भूमिहीन व्यक्तियों को कृषि कार्यों के हेतु सहायतार्थ अनुदान तथा ऋण के रूप में 1,29,000 रुपए स्वीकृत किए हैं। इस राशि से जिले के 48 आदिवासियों और 32 हरिजनों को उनकी सूखा खेती में उन्नति के हेतु 32,950 रुपए, सिंचाई पम्प खरीदने के लिए 10,200 रुपए तथा हरिजनों और मेहतरों को 1500 रुपए की वित्तीय सहायता दी गई। सिरमौर में मैला ढोने के लिए हाथ ठेला खरीदने के लिए 1320 रुपए दिए गए।

आदिवासियों और हरिजनों को कृषि की उन्नत प्रणालियों को अपनाने हेतु प्रोत्साहन देने के लिए बेहरा कला के किसानों को कुओं के निर्माण के लिए 15,000 रुपये स्वीकृत किए गए। इसी प्रकार बैकुंठपुर, सूजीपुरा, मनगवां के किसानों को 15,000 रुपए की राशि स्वीकृत की गई। कृषक ऋण योजना के अन्तर्गत पम्पों को खरीदने के हेतु 7200 रुपए की राशि प्रदान की गई।

अल्प बचत अभियान

शहडोल जिले में 1971-72 में विभिन्न अल्प बचत योजनाओं के अन्तर्गत प्राप्त शुद्ध राशि 12 लाख रुपए के निर्धारित लक्ष्य से लगभग 25,000 रुपये अधिक थी। जिले में आलोच्य वर्ष में विभिन्न अल्प बचत योजनाओं के अन्तर्गत 3492 खातों में 45,20,619 रुपए जमा किए गए।

आलोच्य वर्ष में शहडोल जिले में अल्प बचत योजनाओं को लोकप्रिय बनाने और उनकी ओर पंचायतों तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से जिला तथा खण्ड स्तरीय प्रतियोगिताएं आयोजित की गई। जिले की पाली ग्रामपंचायत इस सम्बन्ध में सर्वश्रेष्ठ घोषित की गई तथा उसे 151 रुपए का नगद पुरस्कार प्राप्त होगा। इसी प्रकार 11 खण्डों में से प्रत्येक खण्ड की विजेता पंचायत को 51 रुपए नगद पुरस्कार तथा 11 खण्डों में प्रत्येक खण्ड के एक सामाजिक कार्यकर्त्ता को 21 रुपए नगद पुरस्कार दिया जाएगा। योजनाओं में 18 लाख रुपए विनियोजित किए गए। जिलाध्यक्ष ने आलोच्य वर्ष में जिले में आयोजित ग्राम बचत अभियान के अन्तर्गत 6 ग्राम पंचायतों और 6 सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को 583 रुपए के बचत प्रमाण पत्र पुरस्कार के रूप में वितरित किए।

खण्डवा जलपूर्ति योजना

खण्डवा जलपूर्ति योजना का द्वितीय चरण लगभग पूर्ण हो गया है। इस पर 68 लाख रुपए व्यय होंगे। इसके पूर्ण होने पर खण्डवा नगर को पूरे वर्ष पर्याप्त मात्रा में जल सुलभ होगा। सुवता नदी से जल पूर्ति करने की इस योजना के अन्तर्गत उपचार संयन्त्र, बांध का कार्य तथा जलशुद्धीकरण यन्त्र, आदि का कार्य पूरा कर लिया गया है तथा डेढ़ तथा पांच लाख गैलन क्षमताओं वाली दो टंकियों का कार्य निर्माणाधीन है। अभी तक इस योजना पर 58 लाख रुपया व्यय हो

चुका है।

बुरहानपुर औद्योगिक क्षेत्र की जलपूर्ति योजना के अन्तर्गत आर० सी० सी० जलाशय तथा पम्प लाइनें डालने का कार्य पूरा कर लिया गया है। पम्प लगाने का कार्य चालू है। इस योजना पर अभी 47,862 रुपए व्यय हुए हैं। इसके अतिरिक्त, बुरहानपुर जलपूर्ति योजना के अन्तर्गत नावथा नहर से पानी लेने की योजना पर भी कार्यवाही आरम्भ हो गई है।

पशुधन विकास

फरवरी 1972 में मध्य प्रदेश की पशुपालन तथा पशु-चिकित्सा सेवाओं के प्रतिवेदन में कहा गया है कि मध्य प्रदेश के पशु चिकित्सालयों तथा औषधालयों ने 1,70,631 पशुओं का उपचार किया तथा 1,50,074 पशुओं को रोग निरोधक टीके लगाए।

आलोच्य माह में कृत्रिम तथा प्राकृतिक विधियों से 18073 गायें व भैंसें फलाई गई तथा 22698 निरुपयोगी साण्डों को बधिया किया गया।

हरियाणा

पीने का पानी

राज्य द्वारा चलाए गए एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम का उद्देश्य पीने के पानी की व्यवस्था करना है, विशेषकर पानी की कमी वाले क्षेत्रों में। आशा है कि मार्च 1972 के अन्त तक लगभग 510 गांवों में ऐसी व्यवस्था कर दी जाएगी, जबकि 1970-71 के अन्त तक ऐसे गांवों की संख्या केवल 404 थी। इस समस्या का अधिक प्रभावशाली ढंग से समाधान करने के लिए एक स्वायत्तशासी ग्राम्य स्वच्छता बोर्ड संगठित किया जा रहा है और यह आशा की जाती है कि 1972-73 के दौरान 150 से अधिक नए गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था कर दी जाएगी।

राज्य में पिछले कुछ वर्षों के दौरान सिंचाई सुविधाओं के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा इसके प्रभावशाली परिणाम निकले हैं। जिन महत्वपूर्ण परियोजनाओं पर कार्य चल रहा है, उनमें से एक 13.50 करोड़ रुपए की लागत वाली पश्चिमी यमुना नहर आवर्धन परियोजना है। जुई उठान सिंचाई स्कीम के रिकार्ड अवधि में पूर्ण होने के पश्चात्, अब लोहारु तथा भिवानी उठान सिंचाई स्कीमों पर कार्य चल रहा है। 11 करोड़ रुपए से अधिक लागत वाली लोहारु उठान सिंचाई स्कीम से हिसार तथा महेन्द्रगढ़ जिलों के सूखा-ग्रस्त क्षेत्रों में सिंचाई की जा सकेगी। भिवानी उठान सिंचाई स्कीम के अधीन जुलाई 1972 तक 3 पम्प घरों तथा लगभग 100 मील लम्बे जलमार्गों को चालू किए जाने की सम्भावना है। अनुमान है कि अब जुई, लोहारु तथा भिवानी परियोजनाओं को रावी-व्यास नदियों से सारा वर्ष जल सप्लाई प्राप्त होगी, जिसके लिए सरकार अथक प्रयत्न कर रही है। इनसे प्रति वर्ष 17 करोड़ के मूल्य की अतिरिक्त फसलें पैदा होंगी।

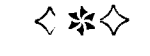

सामुदायिक विकास के अग्रदूत····· [पृष्ठ 19 का शेषांश]

किसान उर्वरक का उपयोग करते हैं। अब तक 70 किसानों ने सघन कृषि कार्यक्रम अपनाया है। 105 एकड़ क्षेत्र में सब्जी उगाई जाती है।

केन्द्र शासित क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेविका का प्रथम पुरस्कार मणिपुर में पूर्वी माओ टी० डी० ब्लाक की ग्रामसेविका श्रीमती चिसा को प्रदान किया गया। श्रीमती चिसा ने अपने क्षेत्र के बारे में बड़े कटु अनुभव बताए। गांवों में जाने के लिए परिवहन की व्यवस्था नहीं है। पहाड़ी रास्ता होने के कारण बिना कुली के गांवों में नहीं पहुंचा जा सकता। वे एक साथ सौ महिलाओं को लेकर यात्रा पर निकलती हैं। वे घर घर जाती हैं और महिलाओं को एकत्र कर उन्हें आधुनिक ढंग से रहने तथा काम करने का तरीका सिखाती हैं। इस समय उनके क्षेत्र में दस महिला मण्डल काम कर रहे हैं। प्रत्येक महिला मण्डल में 60 महिलाएं हैं। श्रीमती चिसा चार बच्चों की मां हैं।

अन्त में सभी ग्रामसेवक इस बात से बड़े खिन्न थे कि सर्वश्रेष्ठ ग्रामसेवक का सम्मान पाने वाले ग्रामसेवकों को उन्नति का कोई अवसर नहीं मिलता।

उद्यान पण्डित श्री सोमराजू

आज से दस पन्द्रह वर्ष पहले कौन जानता था कि हमारे देश की भूमि में अंगूर इतना बढ़िया और इतना अधिक पैदा किया जा सकता है कि जिससे लोग अपनी रोजी रोटी कमा सकें। लोगों की यह धारणा आज निर्मूल सिद्ध हो चुकी है कि भारत की भूमि अंगूर के उत्पादन के लिए उपयुक्त नहीं जबकि अब देश के अनेक भागों में अंगूर का भारी मात्रा में उत्पादन होने लगा है। आन्ध्र प्रदेश में पश्चिम गोदावरी जिले के अर्धवरम गांव के किसान श्री सागीराजू पैंडसोम राजू ने तो अंगूर के उत्पादन में कमाल ही कर दिखाया है। केन्द्रीय कृषि मंत्रालय के विस्तार निदेशालय से 1971 का उद्यान पंडित पुरस्कार पाकर तो वे अपने अंगूर उत्पादन के लिए देश भर में मशहूर हो गए हैं। निदेशालय ने उन्हें पांच हजार रुपए का इनाम और एक कांस्य पदक भी प्रदान किया।

पहले श्री सोमराजू धान ही उगाया करते थे। पर जब उन्हें अंगूर उगाने के लाभों का पता चला तो वे अंगूर उत्पादन की ओर आकृष्ट हुए। वे 1963 में हैदराबाद आए और वहां पास में ही जीड़ी माटला गांव में उन्होंने अंगूर की खेती शुरू की। आन्ध्र प्रदेश के कृषि विभाग ने भी उनकी खूब सहायता की। शुरू शुरू में उन्होंने सिर्फ डेढ़ हैक्टेयर भूमि में अंगूर उगाने शुरू किए और छः वर्ष के अन्दर ही अन्दर चार हैक्टेयर में उगाने लगे। इसमें उन्होंने प्रति हैक्टेयर अस्सी टन उपज ली जिससे उन्हें पचास हजार रु० तक की आमदनी हुई।

सोमराजू का दावा है कि उन्होंने 1968 से आगे अपने अंगूर के बगीचे से लगातार प्रति हैक्टेयर लगभग अस्सी टन की उपज ली। 1968-70 की अवधि में अंगूर की खेती से उन्हें बहुत अधिक उत्पादन मिला और इसी उपज के आधार उन्हें उद्यान पण्डित की उपाधि मिली। सोमराज वास्तव में द्राक्षाराज हैं जिसका अर्थ तेलगु में अंगूरों का राजा है।

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, चित्र, फोटो आदि भेजिए। भाषा सरल हो और रचना का आकार 'कुरुक्षेत्र' के ढाई पृष्ठ से अधिक न हो।

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने या पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 से कीजिए।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक 'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी), खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारिता मन्त्रालय, 407, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1
द्वारा प्रकाशित तथा [illegible] प्रेस, सदर बाजार, दिल्ली-6 द्वारा मुद्रित।

Regd. No. D-28

बांस के ट्यूबवैल

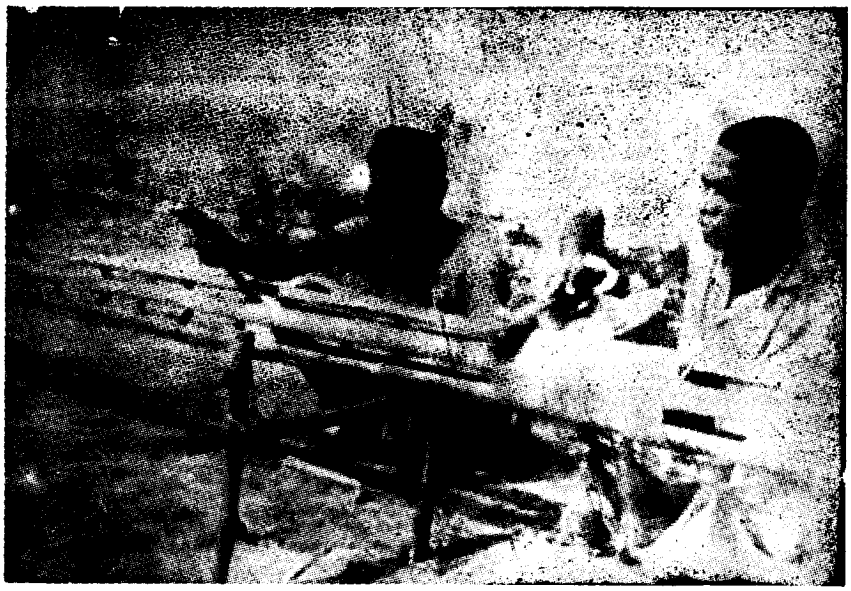

बहुत से लोग शायद इस बात पर यकीन नहीं करेंगे कि बांस से भी ऐसा ट्यूबवैल बनाया जा सकता है, जिसकी पानी निकालने की क्षमता उतनी ही होगी जितनी 4 इंच व्यास के लोहे के ट्यूबवैल की होती है। बिहार के सहरषा जिले में ये बांस के ट्यूबवैल लगाए गए हैं और इनकी लागत केवल 100 रुपए से 125 रुपए तक होने के कारण ये बहुत लोकप्रिय हैं।

बांस के ट्यूबवैल के लिए बांस, लगभग 15 किलोग्राम नारियल का रेशा, टीन की प्लेटें, पुराने बोरे और तारकोल की आवश्यकता होती है। ये सब वस्तुएं किसी भी गांव में आसानी से उपलब्ध हो सकती हैं।

पहले, तीन बांसों को 25 फुट लम्बे और डेढ़ इंच चौड़े टुकड़ों में चीर लिया जाता है। फिर इन टुकड़ों को लम्बाई की ओर से मोड़कर गोल किया जाता है तथा बीच में टीन की प्लेटें लगाकर उसका एक गोल पाईप सा बना लिया जाता है। गोलाई बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पाईप का व्यास हर जगह 4 इंच ही रहे। इसके तुरन्त बाद ही इस बांस की पाईप के चारों ओर नारियल की रस्सी कसकर बांध दी जाती है। यह देख लेना चाहिए कि बांस की परखचें (छड़ें) आसानी से ढीली न हो जाएं। यह 25 फुट लम्बी रस्सी से लिपटी पाईप स्टेनर का काम करती है। 25 फुट लम्बी और 4 इंच व्यास की एक और पाईप के

एस० निजामुद्दीन

चारों ओर बोरे लपेट दिए जाते हैं और बाहर से रस्सी बांध दी जाती है ताकि बोरे ढीले न रह जाएं। इसके बाद बोरे पर तारकोल लगा दिया जाता है ताकि बांस पर दीमक न लगे। यह बोरिंग पाईप का काम देता है। सामान तैयार हो जाने पर डेढ़ इंच व्यास के पाईप के तले पर 5 इंच का साकेट लगाकर बोरिंग शुरू कर दिया जाता है। बोरिंग 50 फुट की गहराई तक किया जाता है और फिर 25 फुट के स्टेनर और 25 फुट बोरिंग पाईप को तार से जोड़ कर इसे कुएं में डाल दिया जाता है। बस ट्यूबवैल तैयार है। पम्पिंग सेट और बोरिंग पाईप में 10 फुट की गहराई तक एक रेचक (सक्शन) पाईप लगाते ही यह पानी निकालने लगेगा।

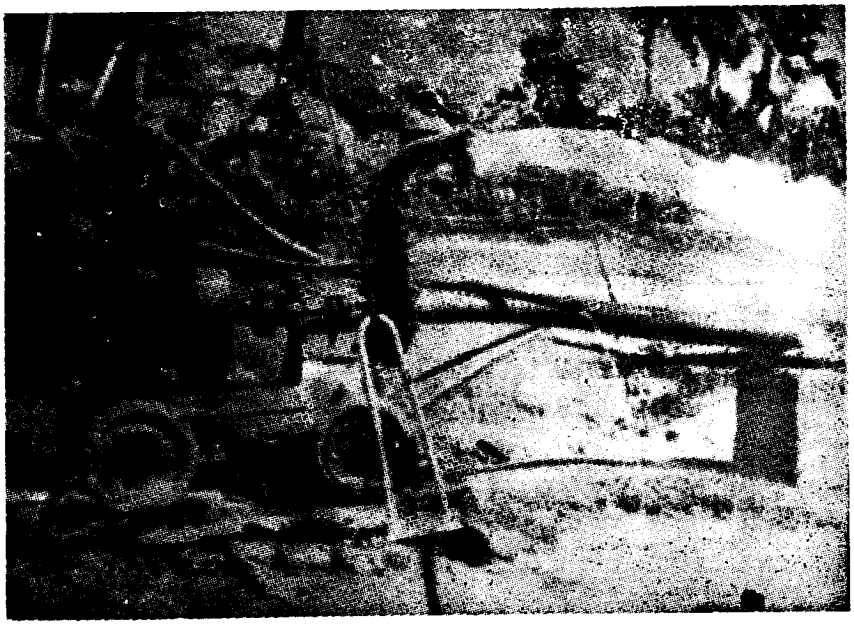

इस सारे काम में 4-5 घण्टे लगते हैं और इस बांस के ट्यूबवैल की पानी निकालने की क्षमता 4 इंच की लोहे की पाइप वाले ट्यूबवैल जितनी ही है। ट्यूबवैल का सामान किसानों को आसानी से और बहुत कम कीमत पर उपलब्ध हो जाता है और इसीलिए यह ट्यूबवैल बहुत लोकप्रिय है।

बांस के ट्यूबवैल के लिए पानी की सतह 10-12 फुट से अधिक नीची नहीं होनी चाहिए और मिट्टी की सतह 40-50 फुट तक नरम होनी चाहिए ताकि खोदने में दिक्कत न हो। पहले लोगों का ख्याल था कि ये ट्यूबवैल टिकाऊ नहीं हैं और शीघ्र ही खराब हो जाते हैं परन्तु अनुभव से पता लगा है कि ये 3-4 साल तक बिल्कुल अच्छी तरह चल जाते हैं। इन्हें और मजबूत तथा 8-10 साल तक चलाने योग्य बनाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं।